Since 1958
50
Golden Jubilee Celebrations

हिन्दी

शीराज़ा

जे. एण्ड के. अकैडमी ऑफ आर्ट, कल्चर एण्ड लैंग्वेजिज़, जम्मू

द्विमासिक

हिन्दी

दिसम्बर–जनवरी 2007–08

प्रमुख संपादक

डॉ. रफ़ीक़ मसूदी

संपादक

नीरू शर्मा
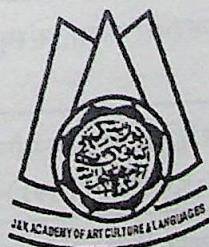
जे० एंड के० अकैडमी ऑफ आर्ट, कल्चर एंड लैंग्वेजिज़, जम्मू–180 001

SHEERAZA Regd. No. : 28871/76 December-January 2007-08
(Hindi)

पूर्णांक : 185 वर्ष : 43 अंक : 5
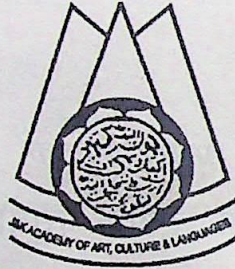
प्रकाशक : सचिव, जम्मू-कश्मीर कला, संस्कृति एवं भाषा अकैडमी जम्मू-180 001

पत्र-व्यवहार : संपादक, शीराजा हिन्दी, जम्मू-कश्मीर कला, संस्कृति एवं भाषा अकैडमी जम्मू–180 001; दूरभाष : (0191)–2577643, 2579576

मुद्रक : रोहिणी प्रिंटर्ज़, कोट किशन चंद, जालंधर, पंजाब–144 004 दूरभाष : (0181)–2640025

शुल्क दर : एक प्रति 10 रुपये; वार्षिक 50 रुपये

संपादकीय

किसी भी रचना के लिए विषय एवं उसकी अभिव्यक्ति आवश्यक होती है। अभिव्यक्ति को शैली भी कहा जा सकता है। शैली विचारों का परिधान ही नहीं है। अपितु इसका संबंध विचारों से इतना घनिष्ठ होता है, जितना शरीर और त्वचा का। परिधान तो बदला भी जा सकता है पर त्वचा शरीर से अलग नहीं हो सकती। शैली का अर्थ है अभिव्यक्ति का प्रकार या शिल्प। इसके अंतर्गत शब्द, वाक्य, गुण, अलंकार, पद-विन्यास, छंद आदि आते हैं। शब्द-चयन, अलंकारों आदि का सशक्त प्रयोग करके कोई भी रचनाकार अपनी रचना को उत्कृष्ट बना सकता है। जिस लेखक की अभिव्यक्ति जितनी संक्षिप्त और सम्यक् होगी वह उतना ही बड़ा शैलीकार होगा और उसकी रचना का प्रभाव पाठकों के मन पर अधिक गहरा और व्यापक होगा।

शैली उस व्यक्तिगत विशिष्टता की ओर संकेत करती है, जिसे पढ़कर हम कह उठते हैं कि ये पंक्तियां अमुक लेखक की हैं। शैली में सच्ची वैयक्तिकता की कसौटी यही है कि पाठक यह अनुभव करे कि जिस भाव को लेखक प्रेषित करना चाहता था, वह शैली के अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार भी व्यक्त नहीं किया जा सकता है। शैली का मुख्य लक्ष्य यही है कि लेखक अपने भावों को उसी तरह अनुभव करके लिखे जिसे पढ़कर पाठक उस भाव को वैसे ही महसूस भी करे।

यह सत्य है कि साहित्य की नई धारा को समझने में समय लगता है। पर हमें अधिक धैर्य से उसे समझने की चेष्टा करनी चाहिए।

नीरू शर्मा

इस अंक में

विशेष आवरण /SPECIAL COVER

जे एण्ड के अकादमी ऑफ आर्ट कल्चर एण्ड लैंग्वेजिज़ के ५० वर्ष
GOLDEN JUBILEE OF J&K ACADEMY OF ART, CULTURE & LANGUAGES

स्वर्ण-जयन्ती समारोह

उद्घाटन 25 अक्तूबर 2007

विशेष आवरण दा विमोचन माननीय श्री ए. आर किदवई (राज्यपाल हरियाणा), जनाब गुलाम नबी आज़ाद, अध्यक्ष, जम्मू-कश्मीर कला, संस्कृति एवं भाशा अकैडमी (मुख्यमंत्री जम्मू-कश्मीर) एवं अकैडमी सचिव डॉ० रफ़ीक़ मसूदी द्वारा किया गया।

डायरी के पन्नों से

❐ रमेशचन्द्र शाह*

नैनीताल • 27-06-85

शंभू भाई साहब ने प्लास्टिक का थैला मुझे थमाते हुए कहा-जरा संभाल के रखना भई। कहीं टूट-टाट गया तो तीन-चार हज़ार की चपत लग जाएगी। थैले में सऊदी अरब से उनके पुत्र द्वारा भेंट किया गया बेशकीमती कैमरा था।

हम सातताल की सैर करने जा रहे थे। महरा गाँव तक बस में, वहाँ से पैदल। रास्ते में एक दुकान पर चाय पी। वहाँ से एक रास्ता नल-दमयन्ती ताल और भीमताल की ओर ले जाता था और दूसरा साततान की तरफ। जगह-जगह नोटिस लगे थे-चीख-चीख कर घोषणा करते हुए, कि 'यह क्रिश्चियन एस्टेट है, क्रिश्चियन आश्रम है, खबरदार।' दुकानदार का गुस्सा देखने लायक था-मिशनरियों की चर्चा छिड़ते ही।

चाय पीकर हम नीचे उतरे। उतरते-उतरते नीचे एकदम खड्डे में एक झील सोयी दिखी। 'यही है साततान'-भाई साहव चिल्लाये। पगडंडी भी उन्होंने छोड़ दी। ताल तक सीधे उतरने वाली रपटीली ढाल पकड़ने की चुनौती दी जो मैंने कबूल की। ताल पर पहुँचे तो मैंने कहा-हम गलत जगह आ गये भाई साहब, भाई साहब रुष्ट हो गये। उन्हें पता नहीं और मुझे पता है, हद हो गयी! खैर, किनारे-किनारे चले तो एक जगह बोर्ड लगा दिख गया-'पन्ना ताल बहुत गहरा और खतरनाक है। यहाँ तैरना सख़्त मना है।' अब भाई साहब डगमगाए चलो कोई बात नहीं' कहते हुए एक सड़े हुए मजनूँ के ठूँठ पर मुझे बिठा के उन्होंने मेरा फोटो लिया। फिर उस पर खुद बैठे और मुझसे फोटो लिवाया। अब रास्ता किधर से है, कुछ पता नहीं। दुर्गन्ध के मारे नाक फटी जा रही थी। एक लंगूर की लाश पड़ी हुई थी वहीं किनारे पर। उसे पार किया तो एक पगडंडी का आभास हुआ। चलते -चलते एक बटोही मिला और उसने बताया-'साततान आगे है।'

तो यही है साततान! दो जुड़वाँ तालों से बना। एक-का नाम रामताल, दूसरे का सीताताल। तो साततान नाम कैसे पड़ गया ? इसलिए, कि कुल मिलाकर इस इलाके में छोटे-बड़े साततान थे जिनमें से कुछ सूख भी गये। जुड़वाँ ताल निश्चय ही, नयनाभिराम जिन्हें कहा जा सके, ऐसे थे। आस-पास की पहाड़ियाँ भी बहुत सुंदर थीं; घने जंगल से ढकी हुईं। भीड़ भी ज़्यादा नहीं थी। सिर्फ दो-तीन मैटाडोर खड़े थे। एक किनारे पर छोटी-सी दुकान थी जहाँ पुड़ी-साग मिल रहा था। झील की परिक्रमा करते-करते भूख लग आयी थी, पूड़ी-साग खाकर एक मैटाडोर वाले की मिन्नत की तो चढ़ाई उसने पार करवा दी। मोड़ों पर बीच-बीच में झलक मारती झील कुछ देर में बिल्कुल ही ओझल हो गयी और हम फिर से उसी दुकान पर थे।

दुकान पर लगी एक तस्वीर को देखकर भाई साहब बड़े उत्साह के साथ 'पायलट बाबा' के बारे में बताने लगे। ''पहले वे यहीं रहते थे और यहीं रहते हुए उन्होंने फलानी किताब

* *एम-4, निराला नगर, भदभदा रोड़, भोपाल-462003*

लिखी थी। तुम्हें ज़रूर ही पढ़नी चाहिए वह किताब''........ फिर वे पायलट बाबा की अद्भुत स्मरण-शक्ति का बखान करते रहे। ऐसे स्मरण-शक्ति,जो पूर्वजन्मों तक को प्रयत्क्ष कर सकती है। ढाई बजने को आ गये थे। हमने भीमताल का रास्ता पकड़ा। दुकानदार ने आश्वस्त किया- ''अरे बस दो किलोमीटर समझ लो-ज़्यादा-से-ज़्यादा।''

अब, साहब, चलते-चलते शाम हो गयी और भीमताल का कहीं पता नहीं। एकदम ऊंचाई पर एक पतली पगडंडी पर टिके नीचे विस्तृत घाटी और सीढ़ीनुमा खेतों को निहारते भला हम खुद किस पायलट बाबा से कम थे! हवाई जहाज से भी क्या ऐसा दृश्य मिलेगा? मगर, आँखें दृश्यों से नहीं थकतीं, इसका मतलब यह तो नहीं कि टाँगें भी नहीं थकेंगी। ढाई बजे चले थे, अब साढ़े चार होने को आ रहे थे और दुकानदार के वे दो किलोमीटर हमसे जाने कितने किलोमीटर नपवा चुके थे।

तभी सामने भीमताल का भीमाकार नागा पहाड़ दिखा और मैंने कहा-लीजिए, अब आगे इस रास्ते को नापने का कोई मतलब नहीं। किसी तरह नीचे पहुँचने का जुगाड़ कीजिए। एक ग्रामीण पानी भरकर ले जा रही थी। उसने रास्ता बताया उतरने का। थोड़ी दूर तक गाँव के बीचोबीच से हल्की ढलान पर से गुज़रता वह रास्ता एकाएक ऐसा उतार बन गया कि देख के ही हम दोनों की तबीयत झक हो गयी। लगभग पौन किलोमीटर का वह लम्बवत् उतार हमारे द्वारा पार किये गये पाँच किलोमीटर पर भी भारी पड़ा। बस्ती तक पहुँचते-पहुँचते टाँगें जवाब दे चुकी थीं। तभी पाँच बजे की आखिरी बस सामने से धुआँ उड़ाती आती देखी, ठसाठस भरी उस बस में किसी तरह टँगे-टँगे हम वापस नैनीताल पहुँच गये।

विवेकदा के साथ बिनसर की खड़ी चढ़ाई चढ़ना एक अनुभव था। पिछली बार आया तब वात्स्यायन जी के साथ आया था। तब ज़्यादा मज़ा आया था कि अब ? निश्चय ही तब। कारण ? वात्स्यायन जी का साथ। कम बोलने वाला भी किस कदर 'भरा-पूरा साथ' हो सकता है इसका इससे पक्का प्रमाण और क्या होगा? याद आता है एक बार वात्स्यायन जी ने मुझसे पूछा था Presence के लिए कोई उपयुक्त समकक्ष हिन्दी पर्याय बताइए। मैं नहीं बता पाया था और वे आधा मिनट ठिठक कर, वापस मुड़ गए थे अपनी कोठरी की ओर- जहाँ वे निश्चय ही कुछ लिख रहे होंगे जिसमें उन्हें इस अर्थ की जरूरत पड़ी होगी। मुझे लगा खुद वात्स्यायन जी के व्यक्तित्व में वह 'प्रज़ेंस' है.... वह आभा या प्रभामंडल - जो अपने-आप में कैसी भी वाग्मी मुखरता से कहीं ज़्यादा प्रभावशाली होता है और 'इलोक्वेण्ट' भी। याद आता है जब मैंने यह पर्याय सुझाया था काफी सोचने के बाद में, तो उन्होंने मुस्कुराते हुए किन्तु निर्णायक मुद्रा में उससे असन्तोष प्रकट किया था। ''वह तो aura हुआ-उन्होंने कहा था।'' ''aura 'प्रज़ेंस' नहीं है।''

वात्स्यायन जी में वह 'प्रजेंस' है, जो विवेकदा में उस तरह नहीं है। कमाल की बात है हम पहली शाम जब साथ बैठे तो हमने पाया कि हम वात्स्यायन जी के बारे में ही बात कर रहे हैं। कुछ खीझे भी थे विवेकदा इस बात से- ''Oh, why are we talking about Vatsyayan?''

बहुत बातें हुई विवेकदा से-पर वह मज़ा नहीं आना था, नहीं ही आया जो उस तीसरे की संगत में आया था।

मैं क्यों चौथे ही दिन वहाँ से भाग खड़ा हुआ ?

मैं दरअसल ऊब चला था। इतनी ऊँचाई, इतना नैर्जन्य भी मुझे रास नहीं आया। फिर जिस एक और व्यक्ति का साथ मुझे मिल सकता था-उसके साथ मन कुछ मिला नहीं। मुक्ति-विवेकदा की बेटी-जो इस इलाके में खासी मशहूर हो चुकी है। बेहद स्मार्ट और बुद्धिमती।

वैसे, तीन दिन काफी थे। नहीं ? पर .... पीछे मुड़के देखता हूँ तो सबसे ज़्यादा स्मरणीय सबसे ज़्यादा उत्तेजक और स्फूर्तिप्रद अनुभव इस प्रवास के दो ही थे। एक तो विवेकदा के साथ अन्यारपानी से ऊपर उनकी चोटी तक खड़ी चढ़ाई वाली पैदल यात्रा... और दूसरा... चौथे दिन सुबह-सुबह उस चोटी से नीचे अल्मोड़ा ले जाने वाली सड़क पर ठेठ कफड़खान तक लगभग छह मील का पैदल मार्च।

विवेकदा शमशेर बहादुर सिंह के साथ दिल्ली के आर्ट स्कूल में थे। "शमशेर की ड्राइंग बहुत अच्छी थी"-उन्होंने बताया। मेरे यह पूछने पर, कि 'विवेकदा, आपने पेंटिंग क्यों छोड़ दी'- उन्होंने मुझे सहमा देने वाली सरलता और दो-टूक स्पष्टता के साथ उत्तर दिया- "रमेश, टेलेंट नहीं था।"

किन्तु वे हैं बहुत ही मज़ेदार आदमी। आध्यात्मिक साहित्य में उन्हें विशेष रस है। उत्तर वृन्दावन-यानी, मिरतोला आश्रम-के माधव आशीष के साथ उनकी खासी घनिष्ठता है।

भोपाल •
14 जुलाई, 82

वह चल बसा अचानक-अपनी मेज़ पर झुके-झुके एक चिट्ठी लिखते-लिखते...... उसे बीच में ही अधूरा छोड़कर ......। झपट्टा मारकर दबोच लिया मौत ने उसे। अब वह कभी नहीं बोलेगा। न मुझसे, न अपने-आपसे, न ज़िन्दगी से, न मौत से।

सब कुछ यथावत् था उसके कमरे में-जहाँ हमने कितना सारा समय अंतरंग वार्तालाप में गुज़ारा। वही किताबें उसी तरह लगी हुई, वही पेंटिंग जो उसे प्रिय थी, वही मेज़-कुर्सी और तख़्त, वही दरवाज़ा-बालकनी और ..... पार्क। उसकी कितनी चिट्ठियों में इस पार्क की मौजूदगी है। पार्क अब भी मौजूद है। पर उसका साक्षी-भोक्ता अन्तर्धान हो चुका है।

उसके बच्चे, उसकी पत्नी, छोटा भाई, उसके पिता, उसका यह चित्र....... सम्बन्धों का वह जाल जिसे साथ लिए वह रेंगता-घिसटता और उड़ता था। कभी मुक्ति के साथ, कभी मुक्त होने की तमाम तरह की युक्तियों के साथ। अक्सर एक सहज स्वीकार और निर्मम किंतु आत्मीय लगाव के साथ। अपनी सारी घुटन और तड़फड़ाहट को अपने मुक्ति के स्वप्न के बीचोबीच रखकर जाँचते-परखते हुए......।

प्रेमा-उसकी बहन - ने मुझे लिखा है- "मैं उनके निकट अकेलेपन और खौफ़नाक तकलीफों की एकमात्र ग़वाह...... जिसने उन्हें आज पच्चीस बरसों से मौत को बूँद-बूँद पीकर अपना अस्तित्व साहित्य में ढालते देखा है।"

यह कितनी सच्ची बात है। अपने अस्तित्व को साहित्य में ढालने की बात! अभिव्यक्ति मलयज नाम के इस लेखक के लिए सबसे बड़ा मूल्य और इस मूल्य -विपर्यय के युग का एकमात्र असन्दिग्ध मूल्य था। वाग्मिता से-रेहटरिक से -इस लेखक को गहरा परहेज़ था। वह अपने होने को-होने की हर रंगत को, शब्दों के अपने नितान्त मौलिक विन्यासों के जरिये टटोलता-छूता-पकड़ता था। ऐसे लोग कितने विरल हैं जिनका शब्द के साथ ऐसा निपट और अटूट सम्बन्ध हो-नितांत उनका अपना कमाया हुआ सम्बन्ध।

मलयज की डायरियां मलयज के अन्तर्जीवन का सबसे गहरा साक्ष्य रचती हैं। कविताओं से भी कहीं गहरा। 'He who touches this book, touches a man'- किसने कहा था ? बिल्कुल ऐसा ही। मलयज की कविताओं की तरह उनकी डायरियाँ भी 'इमोशनली प्रिसाइज़' हैं...... बल्कि कविताओं से कहीं ज़्यादा मुक्त भी।

क्या वह अत्यधिक संवेदनशील और अत्यधिक बौद्धिक एक साथ था? एक जगह मुझे याद है-उसने मेरे बारे में लिखा है- ''उसकी समस्या बौद्धिक है, मेरी भाविक''......। कितने आत्मविश्वास के साथ उसने यह तुलनात्मक निष्कर्ष टाँका है। एक जगह उसने इस बात पर थोड़ा अचरज भी जताया है कि ...... ''हम दोनों एक दूसरे के व्यक्तिगत जीवन के बारे में कोई कुतूहल नहीं दिखाते।'' यह भी ...... कि, ''हमारी मैत्री में शुरू से ही यह निहित था कि हम एक-दूसरे की निर्मम कसौटी बनेंगे।''

अपने एक हाल ही के पत्र में मलयज ने मुझे लिखा था- ''एकाएक मुझे याद आया कि तुमने बहुत दिनों से बहुत प्रेरणा से भरा मुझे पत्र नहीं लिखा। मैंने भी नहीं लिखा। हम अपनी टूटनों को भी याद नहीं रख पाते। वे भी एक सूखी चुप्पी में खो जाते हैं ......'' बात उनकी सही थी। पर ऐसा कैसे हुआ ? क्या अब हमारे पास एक-दूसरे के साथ सांझा करने योग्य, एक-दूसरे को देने लायक-सचमुच कुछ नहीं बंचा था ?

नहीं! ऐसा बिल्कुल नहीं था। किसी भी, कैसे भी सम्बन्ध में ऐसे अंतराल आते ही हैं। संवाद की अवरुद्ध संभावनाओं को उन्मुक्त करने के लिए ही, मानो ....

कौसानी •

1 अक्तूबर 1986

सुबह से बारिश हो रही थी। कुहरे से ढकी हुई थीं सारी पहाड़ियां। पर, दोपहर की नींद से उठते ही देखा-सामने त्रिशूल झलमला रहा है। पलभर को अचकचा गया मैं। अपनी आंखों पर भरोसा नहीं हुआ।

देखते-देखते उत्तरी क्षितिज के समूचे विस्तार में यहाँ से वहाँ तक हिमचोटियाँ ही हिमचोटियाँ निखर आयीं .... । त्रिशूल,चौखम्भा, नन्दादेवी, नन्दाकोट ..... ही नहीं, उनके इधर और उधर की भी सारी हिमश्रेणियाँ ऐसे जगमगाने लगीं,जैसे समुद्र में डूबी हुई पृथ्वी ही जलप्रलय के बाद ऊपर आ गयी हो। जैसे ये हिमशिखर इन पर्वतों के अंग हो ही नहीं,

उनसे एकदम अलग और ऊपर एक दूसरी ही सत्ता हो-धरा और व्योम के बीच अचानक आविर्भूत......।

एकाएक कत्यूर घाटी से कुहरा उठा और धीरे-धीरे उस समूचे आविर्भाव को निगल गया। लोगों के चेहरे बुझ गये। मैंने कहा- "आप लोग हताश न हों। थोड़ा सब्र करें। अभी फिर से पर्दा उठेगा। अभी और भी लीला शेष है इस रंगमंच पर। इतनी जल्दी पटाक्षेप होगा नहीं। आप देखते रहिए।

सचमुच कुछ ही पलों के बाद वह आवरण हट गया और वह समूची हिमश्रृंखला एकबार फिर से उजागर हो आयी-इस बार पहले से भी अधिक दमकती हुई। हम अपने कमरों से निकलकर बाहर सीढ़ियों पर बैठे थे। एक गुजराती दम्पति तो वहाँ जाने कब से जमे हुए थे। उनकी प्रसन्नता जैसे छलकी पड़ रही थी। उन्होंने जीवन में पहली बार हिमालय देखा था।

लुका-छिपी के इस खेल के बाद डूबते सूरज की आभा में शिखरों की रंग-क्रीड़ा का एक नया ही दृश्य खुला। एक शिखर से दूसरे शिखर को फलाँगती धूप ...... एक-एक कर रंगों का खिलना और फिर धीरे-धीरे बुझना और फिर आखिरी बार बुझने से पहले यहाँ से वहाँ तक दमक जाना......

आखिरकार खेल खत्म हुआ। इधर गुजराती दम्पति का धन्य-भाव मुखरित होने लगा और उधर मेरा ध्यान एक दूसरे ही खेल की ओर खिंचा। वहाँ भी चमत्कार हो चुके थे। इंग्लैण्ड की पूरी टीम एक-सौ दो रन पर लुढ़क चुकी थी। अब भारत खेलने आ रहा था दूसरी पारी। ये लो, उसके भी दो विकेट पलक झपकते गिर गये। एक दिन में चौदह विकेट ...... कहीं यहाँ भी वैसा ही पतझड़ न हो जाए ?

रेस्टहाउस के चौकीदार का छोटा-सा ट्रांजिस्टर ज़बरदस्ती कबाड़ कर हम सैर को निकल पड़े। तेरस का चन्द्रमा पूनम के चन्द्रमा की तरह जगमगा रहा था। चाँदनी में दिपते हिमशिखर ! .... कितने युग बीत गये इस तरह चाँदनी में हिमालय को देखे।

रेस्टहाउस से काफी आगे निकल आये थे हम। देवदारों के झुरमुट में चन्द्रमा के साथ आगे बढ़ते-बढ़ते .... पूरा जंगल जैसे मूर्त और सजीव हो आया था अपनी निःस्तब्धता में। ज्योत्स्ना पूरी तरह उस सजीवता से तदात्म थी। मेरा ध्यान बहक रहा था। बीच-बीच में ट्रांज़िस्टर खोलके कान से लगा लेता मैं ...... चौथा विकेट गिर चुका था कुल पैंतीस के स्कोर पर।

ज्योत्स्ना कमरे में चली गयी। ट्रांज़िस्टर चौकीदार को सौंपने में टँगा रहा काउण्टर के पास। स्कोर इकसठ हो चुका है। यकायक ..... 'एण्ड ही इज आउट, पंडित क्लीन बोल्ड!' .... वेंगसरकर मगर टिका हुआ है.... और यह आखिरी ओवर चल रहा है ..... चलो, जान बची। अभी तो पांच विकेट बाकी हैं। वे भी गिरेंगे, मगर कल। कल तो कल ही है- शायद विकेट का मायावी आचरण बदल जाए कल तक। और हो ही जाए एक और चमत्कार ....।

०००

ललद्यद

❑ वेदराही *

पौष और माघ के सूखे पाले के बाद भी न हिमपात हुआ न बादल बरसे। अब तो वैशाख भी बीत गया। जिन पहाड़ों पर बारहों महीने बर्फ जमी रहती थी, वे भी नंगे हो गए। शिखर कुरूप और दरिद्र लगने लगे। नदियां नाले बन गईं, नालों के निशान रह गए। खेतों का लहू निचुड़ गया। उन की हड्डियां निकल आईं।

ऐसा काल कभी नहीं देखा था लोगों ने। दीन-हीन दाने-दाने को तरस गए। डंगरों-पशुओं को घरों से खदेड़ दिया गया। बच्चे एक-एक ग्रास को तरस गए। नन्हें शिशुओं ने बूँद-बूँद दूध के लिए माओं की छातियां हुड़क-हुड़क कर घायल कर दीं।

बच्चे जंगलों में घूमने लगे कि कहीं कोई हरा पत्ता मिले तो चबा लें। एक बच्चा घूमता-फिरता उस वृक्ष के पास पहुंचा जिसके खोखले तने के भीतर लल गुच्छ-मुच्छ होकर सोई थी। उसे देखकर बच्चा डर गया। वह भागा। गांव का एक वृद्ध व्यक्ति उस तरफ से गुज़र रहा था। उसने लड़के से पूछा वह क्यों भाग रहा है। लड़का उसे उसी पेड़ के पास ले गया। वृद्ध ने ध्यान से देखा तो वह लल को पहचान गया। वह गाँव के बहुत से लोगों को बुला कर ले आया। उन सब ने लल के बारे में बहुत कुछ सुन रखा था। कई लोगों को लल के वाख(गीत) भी याद थे। वे यह भी जानते थे कि लल का आशीर्वाद फलीभूत होता है। वे सब एक नई आशा से उत्साहित होकर वृक्ष के पास बैठ गए, और लल के जागने की प्रतीक्षा करने लगे।

धूप ढलने लगी तो लल की आँख खुली।

वह अब बूढ़ी हो चुकी थी, बहुत दिनों से उसने कुछ खाया नहीं था। वह घिसटती हुई उस खोह से बाहर आई तो इतने लोगों को वहां एकत्रित देख कर चकित हुई । उसी वृद्ध व्यक्ति ने हाथ जोड़ कर कहना आरम्भ किया, "ललेश्वरी माई हम सब तुम्हें नमस्कार करते हैं। हम जानते हैं शिव-शंकर महाराज तेरी अरदास सुनते हैं। तू हम पर अनुग्रह कर। उनसे कहो वे बादल बरसाएं। बरखा लाएं। यदि हम से भूल-चूक हुई है तो उसके लिए क्षमा करें। शाप वापस लें। हमारे बच्चे भूखों मरने लगे हैं। खेतियां नष्ट हो गईं। डंगर-पशु समाप्त हो गए।"

लल जानती थी काल पड़ा है,परन्तु लोगों की दशा ऐसी हो गई है, जानकर उस का कलेजा काँप उठा अत्यंत अर्द्र स्वर में बोली, "शिव मेरी अरदास क्या सुनेंगे ? मैं भी इतने दिनों से भूखी-प्यासी हूँ।"

---

* *बी-2/35, सर्वोत्तम सोसायटी, इरला ब्रिज, अंधेरी (पश्चिम) मुंबई-58*

एक और वृद्ध व्यक्ति ने हाथ जोड़ते हुए कहा, ''देवी ! यदि शिव-शंभू तेरी नहीं सुनेंगे तो उनके आगे सिर कौन नवाएगा ?''

लल ने उत्तर दिया, ''वह नीलकंठ चाहे कुछ भी करें, सिर तो सभी को उनके आगे नवाना पड़ेगा।'' यह कहकर उसने आकाश की ओर देखा, जैसे उलाहना दे रही हो। फिर वह सहसा एक तरफ चल दी। उसकी चाल में निर्बलता थी। उसके शरीर पर उतनी ही धज्जियां शेष थीं जितनी कम-से-कम आवश्यक थीं। उस के केश गुथे हुए थे।

लोग भी अनायास उसके पीछे-पीछे चल पड़े। उनके हाथ में कुछ नहीं रहा था। अब उनके पास मन्नतों-मनौतियों के लिए भी कुछ नहीं था। हिम्मत भी नहीं थी कुछ करने की। लल के पीछे-पीछे यों चल रहे थे जैसे बाढ़ में तीले-तिनके बहते हैं। लल को पाकर उनकी मरी हुई आस जागी थी। अब तो बरखा के लिए चमत्कार की आवश्यकता थी। पर लल जा कहां रही थी। उसने तो उन्हें पीछे आने के लिए नहीं कहा था।

चलते-चलते लल एक जगह गिरने लगी तो वह पास ही पड़े एक ठूँठ पर बैठ गई। बैठते-बैठते भी डोलका लगा। लोग डर गए। दो स्त्रियों ने आगे आकर उसे सहारा दिया। एक ने पूछा, माई तुम इस ओर कहां जा रही हो ?

लल बोली, ''जंगल के बाहर खेतों की तरफ। वहां बैठकर शिव के सामने अरदास करूँगी। मैं उन से कहूँगी यदि उन्होंने जीव-लोक का ही नाश कर दिया तो उन का नाम कौन लेगा ?'' यह कह कर वह उठ खड़ी हुई। उसने फिर चलना आरम्भ कर दिया। स्त्रियों ने उसे सहारा दे रखा था।

जंगल के बाहर पहुंच कर लल ने देखा दूर-दूर तक फैले हुए खेत सूखे मैदानों के समान हो गए थे। धूल उड़ रही थी। जगह-जगह मरे हुए पशु पड़े थे। वह एक पत्थर पर बैठ गई। आकाश की ओर देखा। सभी दिशाओं में आग लगी अनुभव हो रही थी। उसके मुंह से अनायास निकला, ''शिव-शंभू यह क्या करने लगे तुम ? इन बेचारों को दुःखी करके स्वयं दुःखी होगे। इन के सब कष्ट-कसाले मुझे दे दे। मैं उफ़ नहीं करूंगी। इन्हें क्षमा कर दो।'' यह कहते-कहते लल समाधि में चली गई।

सब तरफ धूम मच गई कि शिव-भक्तिन ललेश्वरी ने शिव से अरदास की है। उन्हें बरखा बरसाने के लिए कहा हैं। लोगों में उत्साह आ गया। दूर-दूर से लोग लल के दर्शन करने आने लगे। वे लल को नमन करते और वहीं बैठ जाते जहाँ लल की समाधि लगी थी। एक दिन बीत गया। दूसरा बीत गया। तीसरे दिन सभी बेचैन हो गए। आकाश वैसे का वैसा जल रहा था। बादलों का कहीं नाम-निशान नहीं था।

अचानक बादलों की घन-गरज सुनाई दी।
सब लोग चैतन्य हो गए। उद्विग्न हो कर खड़े हो गए।
लल की समाधि भी टूट गई। उसने आंखें खोल दी।

परन्तु बादल तो कहीं भी दिखाई नहीं दे रहे थे। आकाश पर चारों दिशाओं में धूप ने आग लगा रखी थी। सभी दंग थे कि घन-गरज की ध्वनि किस ओर से आ रही थी।

धीरे-धीरे सब की समझ में आने लगा कि यह बादलों की गर्जना नहीं। यह तो जंगल में कहीं घोड़े दौड़ रहे हैं। सम्भवत: इसी ओर आ रहे हैं। देखते-देखते दस-बारह घोड़े जंगल से बाहर निकलते दिखाई दिए। वे उसी ओर आ रहे थे जहां लोग लल को घेर कर खड़े थे। घुड़सवारों को देखते ही लोग डर कर यहां-वहां भागने लगे। वे समझ गए थे कि वे शाही सवार हैं।

सवारों में सब से आगे चन्द्रा डामर था। उसने अपना घोड़ा रोका तो पीछे सारे सवार रुक गए। डर कर भाग रहे एक व्यक्ति को डपट कर कहा, ''ठहरो''- वह ठहर गया, परन्तु उसकी टांगें कांप रही थीं। चन्द्रा डामर ने कड़कदार आवाज़ में पूछा, ''इस तरफ हमारे शहज़ादा साहब तो घोड़े पर बैठे नहीं गुज़रे ?''

''नहीं महाराज, मुझे क्षमा करो, मैंने किसी को नहीं देखा।''

''यहां इतने लोग क्यों इक्ट्ठा हैं ?''

''महाराज हम सब ललद्यद के पास बैठे हैं।''

''कौन ललद्यद ?''

''शिव भक्तिन है, वाख गाती है। उसने शिव से अरदास की है कि बरखा बरसाएं, शाप दूर करें।''

चन्द्रा डामर ने दूर से ही लल को देखा। वह अपने घोड़े को उस तरफ ले गया। कुछ लोग जो वहां विद्यमान थे, वे भी इधर-उधर होने लगे। लल को देख कर चन्द्रा डामर हैरान रह गया। कोई पागल औरत ही इतने कम कपड़ों में इतने लोगों के सामने आ सकती है परन्तु जिस प्रकार से वह गहरी दृष्टि से देख रही थी। वह पागल नहीं लगती थी। उसे इतना अनुभव तो था ही, क्योंकि वह कश्मीर के भावी सुल्तान का खास-उल-खास था।

घोड़े पर बैठे-बैठे ही उसने पूछा, ''कौन हो तुम ?''

लल ने कोई उत्तर नहीं दिया।

''सुना नहीं ? कौन हो तुम ? यहां क्यों बैठी हो ?''

लल फिर भी कुछ नहीं बोली। पास ही खड़े एक व्यक्ति ने हाथ जोड़कर कहा, ''महाराज यह ललेश्वरी है। यह वाख गाती है। इनके वाख हम सब गाते है।''

चन्द्रा डामर घोड़े पर से उत्तरा, और लल के पास आ गया। ''इस के वाख मैंने भी सुने हैं।'' उसने हाथ जोड़कर लल को प्रणाम किया और कहने लगा, ''मुझे भी तुम्हारा आशीर्वाद चाहिए।''

लल ने धीरे से अपनी निर्बल आवाज़ में कहा, ''मेरे आशीर्वाद से कुछ नहीं होगा। सब शिव की लीला है, जो वे चाहेंगे वही होगा।

''हम सुबह से शहज़ादा शिराशमक को ढूंढ़ रहे हैं। शिकार खेलते-खेलते वे हमसे अलग हो गए। हमें बताइए वे किस दिशा में हैं।''

लल ने कहा, ''आजकल शिकार खेलने की क्या आवश्यकता है, जगह-जगह पशु भूख-प्यास से मरे पड़े हैं।''

चन्द्रा डामर को बात चुभ गई। उसे आशा नहीं थी कि सामने बैठी हुई निर्वस्त्र अशक्त बुढ़िया उसका अपमान कर सकती है। परन्तु वह जानता था कि जिस हद तक उसका हुक्म चलता है, लल उससे बाहर है, फिर भी उत्तर देना पड़ा, ''माई तुम्हें पता नहीं सुल्तान ने लोगों के लिए अपने भंडार खोल दिए हैं ?''

''इतने लोग यहां खड़े हैं, क्या इनमें से किसी को सुल्तान के भंडार का एक दाना भी मिला है ?''

''इतनी दूर इतना अनाज पहुंचना आसान काम नहीं।''

''इतनी दूर शिकार खेलने पहुंचा जा सकता है, परन्तु लोगों को अनाज देने कोई नहीं आता।''

चन्द्रा डामर का हाथ तलवार की मूठ तक जा पहुंचा। उस का खून खौल रहा था। लल ने उसे लाजवाब कर दिया था परन्तु अधिक कड़वे घूँट पीना उसने नहीं सीखा था। वह लल की हत्या भी कर देता तो उसे पूछने वाला कोई नहीं था। उसी समय अजीब-सा शोर सुन कर उसने जंगल की तरफ देखा शेष सब लोग भी उधर ही देखने लगे। लल भी देखने लगी।

पांच सात लोग किसी एक को पीटते हुए, बुरी तरह खींचते हुए उसी तरफ ला रहे थे। उसे घूँसों, लातों से पीटते हुए। वे उसे गालियां भी दे रहे थे। उन्होंने जब लल के पास शाही सवारों को खड़े देखा तो सहम कर रुक गए।

लल वहां से उठकर धीरे-धीरे चलती उन लोगों के पास आ खड़ी हुई चन्द्रा डामर भी अपने घोड़े की बागें थामे वहीं आ गया। लल देख रही थी लोग जिस व्यक्ति को पीटते घसीटते ला रहे थे वह एक ठिगना-सा बौना था। उस का सिर छोटा था, माथा बड़ा, छोटी-छोटी आँखें अन्दर धँसी हुई थीं। होंठ भद्दे और मोटे थे। नाक छोटा, छोटे हाथ-पांव। वह अत्यंत कुरूप दिख रहा था। वह रो रहा था।

लल ने पूछा, ''तुम लोग इसे क्यों मार रहे हो ?''

एक व्यक्ति ने आगे आकर कहा, ''मैंने अपनी आँखों से इसे मरे हुए पशु का मांस खाते देखा है।'' दूसरे व्यक्ति ने कहां, ''कई दिनों से खा रहा था।''

सब चुप थे।

लल उस बौने को देखे जा रही थी।

बौने ने भी रोना बंद कर दिया था।

लल बोली, ''आज सभी लोग भूखे-प्यासे हैं। खाने को कुछ भी नहीं मिल रहा। अगर इसने भूख मिटाने के लिए मरे हुए पशु का मांस खा लिया तो इस में इस का क्या दोष है ? इसे मारने से क्या लाभ ?

लल की बात सुनकर बौना फिर रोने लगा, और रोते-रोते बोला, ''मैं बहुत दिनों से भूखा था। पहले गांव के किसी-न-किसी घर से मुझे खाने को मिल जाता था। अब मुझे देने के लिए किसी के पास कुछ नहीं। अब किसी घर में चूल्हा भी नहीं जलता। सब भूखे मुझे कोई क्या देगा। मैं चोरी-चोरी उस पशु का मांस खाने लगा। वह तो पहले से मरा हुआ था। मैंने उसे नहीं मारा। फिर मुझे लोग क्यों मार रहे हैं ?''

उस की बात सुनकर सब स्तब्ध थे।

लल ने आगे आकर उसके सिर पर हाथ रखा, और उसके बाल सहलाने लगी। बौना सिसक-सिसक कर रोने लगा।

चन्द्रा डामर ने लल से कहा, ''ललेश्वरी अपने शिव शंकर से कहो अब बहुत हो गया। लोग मरे हुए पशुओं का मांस खाने लगे हैं, हो सकता है आगे एक-दूसरे को खाने लगें।'' यह कह कर वह घोड़े पर सवार हो गया, और फिर बोला, ''माई अगर शिव ने तेरी अरदास सुन ली, और बरखा बरस गई तो मैं शहज़ादा शिराशमक को साथ लेकर तेरे पास आऊँगा। तुम्हारा आशीर्वाद हम सब को चाहिए।'' यह कहकर उसने घोड़े को एड़ लगाई और वहां से चल पड़ा। दूसरे घुड़सवार भी पीछे-पीछे चल पड़े।

रात अधिक अंधेरी थी। तारे चमक रहे थे। हवा में सूखी ठंड की चुभन बढ़ रही थी। खेत की मेंड़ से टेक लगाए लल आधी पसरी हुई थी। पास ही सूखे पत्तों का बिछौना बनाकर बौना लेटा हुआ था। उसे बीच-बीच में नींद आ जाती थी। अधिकतर वह जागा हुआ था।

लल ने पूछा, ''तुझे भूख नहीं लगी ?''

''लगी हैं,'' बौने ने लेटे-लेटे उत्तर दिया

''जाकर कुछ खा ले।''

''क्या खाऊँ ?''

''वह उधर एक सूखे नाले में बैल मरा पड़ा है।''

''मैं नहीं खाऊँगा।''

''क्यों ?''

''लोग फिर मारेंगे मुझे''

''नहीं मारेंगे। मैं उन्हें समझाऊँगी।''

''आप उन्हें क्या समझाएंगी ?'' बौना उठकर बैठ गया।

''मैं कहूँगी जब खाने को कुछ नहीं हो, उस समय कोई भी मनुष्य जिसे भूख सहन नहीं होती मरे हुए पशु का मांस खा सकता है।''

''लोग नहीं मानेंगे आप की बात।''

''नहीं मानें मुझे क्या।''

''मैं नहीं खाऊंगा।''

''तुम्हारी इच्छा।''

''फिर दोनों चुप हो गए।''

''हवा और ठंडी होती जा रही थी।''

लल आकाश की ओर देखते हुए धीरे से बोली, ''मैंने तो मनुष्य का मांस भी खाया है।''

''माई इतना बड़ा झूठ मत बोलो।''

''मैं झूठ नहीं बोल रही। मैं हर समय अपने-आप को खाती रहती हूँ। मैं मनुष्य हूँ, मेरी आयु हर समय घटती जा रही है। इस का अर्थ है मैं अपने-आप को खा रही हूँ।''

बौने को बात पूरी तरह समझ में नहीं आई। कुछ समय बाद वह बोला, ''माई भूख बड़ी बुरी चीज़ है।''

''तुम सच कह रहे हो परन्तु यह भी सच है कि भूख को शिव-शंभू ने पैदा किया है।''

''क्यों पैदा किया उसने भूख को ?''

''यह तो वही जानें।''

''भूख नहीं लगती तो कितना अच्छा होता ?''

''जिसे भूख लगती है उसके अन्दर भी शिव हैं, और जिसे वह खाता है उस के अन्दर भी शिव हैं।''

बौना कुछ सोचते हुए बोला, ''क्या मेरे अन्दर भी शिव है ?''

''हां, तुम्हारे अन्दर भी हैं।''

बौना ज़ोर-ज़ोर से हंसने लगा। उसकी हंसी एक नहीं रही थी। उस अंधेरे सन्नाटे में उसकी हंसी की आवाज़ भयावह लग रही थी। लल उद्विग्न हो गई, ''तुम इतना हंस क्यों रहे हो ?''

''आप की बात सुनकर। मेरे जैसे कुरूप, बदशक्ल बौने के अन्दर शिव महाराज का वास कैसे हो सकता है ?'' यह कहते-कहते भी वह हंस रहा था। पता नहीं क्यों लल को भी हंसी आ गई। उसे हंसते देख कर बौने की हंसी रुक गई। लल बोली, ''मेरी एक बात का उत्तर दे। अगर तू एक खिलौना बनाए अपने हाथ से और वह टेढ़ा-मेढ़ा बन जाए तो तू कहेगा वह तेरे हाथ से नहीं बना ? तू यह बात मत भूल कि तुझे शिव ने बनाया अगर तू हंसेगा तो समझ कि शिव का बनाया हुआ खिलौना शिव पर हंस रहा है।''

''मनुष्य से भूल हो जाती है, भगवान से कैसे हो गई ?''

''यह तो वही जानें। लल ने लम्बी सांस लेते हुए कहा।''

''माई मुझे यह बताओ कि उन्होंने मुझे बनाया क्यों ?''

''तेरे अन्दर रहने के लिए'', ''लल बोली, ''उन्हें भी तो कोई घर चाहिए।''

''उन्हें रहना था तो सोच-समझ कर कोई अच्छा घर बनाते।''

''उनके लिए सभी घर अच्छे हैं।''

दोनों फिर चुप हो गए।

अंधेरा पाले के समान जमता जा रहा था।

बौना फिर बोल पड़ा, ''माई आप सच कह रही हैं मेरे अन्दर शिव महाराज हैं ?''

''अवश्य हैं।''

''मुझे क्यों नहीं पता कि वे मेरे अन्दर हैं ?''

उसका प्रश्न सुनकर लल का मन तड़प उठा। भीतर-ही-भीतर उसे किसी ने चीर दिया। गहरा घाव था। क्या उत्तर दे ? इस प्रश्न का उत्तर पाने के लिए सारी आयु गाल दी। मेरे अन्दर जिस घर में वे रहते हैं, मुझे वहां से बाहर निकाल दिया। घर मेरा। मैं बाहर वे अन्दर। मैं उनके लिए जगह-जगह भटक रही हूँ, मेरे अन्दर बस कर भी मुझे नहीं मिलते। लल की आँखें भर आई वह रोने लगी।

बौना हतप्रभ। ''माई क्यों रोने लगी ?''

''माई मैंने कोई गलत बात पूछी ? रहने दो। क्या फर्क पड़ता है यह जान कर कि वे मेरे अन्दर हैं या नहीं।'' कहकर वह फिर लेट गया। वह मन-ही-मन पछता रहा था। सूखे हुए पत्ते जिन पर वह लेटा हुआ था उसके श्वासों से हिल रहे थे। थोड़ी देर बाद वह सो गया।

रोते-रोते लल की आंखें बंद हो गई। वह कितने अंधेरे सन्नाटों में से गुज़रने लगी। कितने अंधेरे सन्नाटे उसमें से गुज़रने लगे।

धूप का सेक लगा तो बौने की आँख खुल गई। सूखे पत्तों को अपने ऊपर से हटाते हुए वह बैठ गया। देखा तो लल समाधि लगाकर बैठी थी। वह उसकी ओर देखता रहा। उसे लगा कि वह बैठे-बैठे सो गई है। उसके माथे और नाक पर धूप चमक रही थी। लल के रंग में रंगकर धूप लाल हो गई थी। बौने की दृष्टि उस पर टिकी रही। उसकी दृष्टि भी जैसे लाल होने लगी। हर ओर जैसे वही लाल रंग बिखरा हुआ था। जंगल लाल, पहाड़ लाल, आकाश लाल। दूर आकाश की एक नुक्कड़ में कुछ अधिक लाल रंग दिखाई दे रहा था। उसने ध्यान से देखा। लाल रंग छलकता हुआ दिखाई दे रहा था। वह एक झटके से उठ खड़ा हुआ। बादलों के कुछ टुकड़े थे। वे सूरज की लाली से इतने लाल हो चुके थे कि रंग की धाराएं उनमें से निकलती दिखाई दे रहीं थीं। बौने को कई महीनों के उपरान्त आज बादल दिखे थे। उसे अपनी आँखों पर विश्वास नहीं हो रहा था। बड़ी मुश्किल से उसने अपनी दृष्टि को वहां से हटाया। लल की ओर देखा। उसे अनुभव हुआ लल के माथे पर जो लाली है उसका सम्बंध उन छोटे-छोटे बादलों के साथ अवश्य है। उसने बादलों की ओर देखा। उसे लगा कि बादल अब कुछ बड़े हो गए हैं। वह एकदम उछल कर खड़ा हो गया। उसका मन हुआ कि वह लल को झंझोड़ कर उस की समाधि तोड़ दे, और उसे बताए कि तुम्हारी अरदास शिव जी ने मान ली, बादल बढ़ते आ रहे हैं उससे रहा नहीं गया। वह गांव की तरफ भागा।

वह चिल्ला रहा था, ''देखो! देखो! बादल आ गए, बादल छा गए।'' उसका शोर सुनकर लोग घरों से बाहर आने लगे। पुरुष महिलाएं, बच्चे, बूढ़े सब गलियों में एकत्र हो गए। बौने ने चिल्ला कर कहा, पूरब में बादल छाने लगे हैं। लल देवी समाधि लगा कर बैठी है। शिव भगवान ने उसकी अरदास सुन ली है। बादल आगे बढ़ रहे हैं। मेरे साथ आओ, चलो आओ मैं तुम्हें दिखाता हूँ।

लोग उसके पीछे-पीछे चल पड़े। उनको भरोसा नहीं हो रहा था। उनकी भूख और निराशा एक-मेक हो गई थी। उनका कोई उपचार उनके पास नहीं था। कुछ होना न होना एक बराबर हो गया था। बौना कह रहा है तो चलो देख लेते हैं। वे कौन से किसी काम में जुटे हैं। घर में बैठे-बैठे एक-दूसरे को भूखे मरते देखने से तो अच्छा है जहां कोई कहे चल पड़ना।

वहां पहुँच कर बौने ने संकेत किया, ''वह देखो उस जंगल के पार, पहाड़ के ऊपर।'' लोगों ने देखा। उन्हें अपनी आंखों पर विश्वास नहीं हुआ। फिर आश्चर्य से मुंह खुल गए। आंखें चमकने लगीं। उन्होंने लल की ओर देखा। वह गहरी समाधि में थी परन्तु उसके मुख

पर धूप खिली हुई थी। वह बड़ी शांत दिख रही थी। कल के समान उस के माथे पर दुख की कोई रेखा नहीं थी। लोगों का भरोसा जागा कि, वे जो देख रहे हैं, वह सत्य में हो रहा है। बादल वहां हैं, वे बढ़ रहे हैं। कुछ वृद्ध लोग लल के समक्ष जाकर दंडवत् प्रणाम करने लगे। उन्हें देखकर दूसरे भी नमन करने लगे।

बौने की दृष्टि बादलों पर ही जमी हुई थी। उसे उनमें कभी बैल का आकार दिखाई देता कभी हाथी का। फिर उसने देखा बादलों के बहुत से टुकड़े यों फैल गए जैसे चौकड़ियां भरते हिरनों का समूह कहीं से आ गया है। फिर उसे वृक्षों का बड़ा झुंड बनता नज़र आने लगा। लोग भी बादलों का इतनी तीव्रता से बढ़ना देख कर उत्साह से भर रहे थे। लड़कों ने शोर मचाना आरम्भ कर दिया। कई बड़े लोग उन को समझाने लगे। "इतना शोर मत करो, लल माई की समाधि टूट जाएगी।" थोड़े समय के लिए सब चुप हो गए। उन्हें डर भी लगा कहीं समाधि भंग होने से हवा का रुख ही न बदल जाए। ऐसा न हो कि बादल वापस जाने लगें। वे फिर लल की ओर देखने लगे। उस के माथे पर धूप एक दिव्य ज्योति के समान चमक रही थी।

बादलों के रथ बहुत आगे आ चुके थे। लोगों के लिए चुप रहना कठिन हो गया। महिलाएं लल की बलैयां ले रहीं थीं। कुछ उसके पास बैठ कर रोने लगीं। उनके शिशुओं के बचने की आशा जागी थी। उनको हृदयों में उथल-पुथल थी।

धूप छुपने लगी तो सब की दृष्टि ऊपर उठी। बादल सिरों के ऊपर आ पहुंचे थे। सहसा कुछ बूँदें टपकी। लड़कियों-लड़कों ने नाचना शुरू कर दिया। वे गाने लगे। "बादल भइया बरस-बरस, खेतों पर बरस-बरस, गांवों पर बरस-बरस।"

बादल सचमुच बरसने लगे। अब लड़कों और लड़कियों के साथ बड़े लोग भी नाचने लगे। महिलाएं भी नाचने लगीं। जिनकी गोदियों में छोटे बच्चे थे वे उन्हें हवा में उछाल-उछाल कर बहलाने लगीं। बड़े बूढ़े तालियां बजाने लगे। सब से अधिक मस्ती में आया हुआ बौना नाचता हुआ मिट्टी में लोट-पोट हो रहा था।

लल समाधि से निकली। बरसती बरखा में उसने आंखें यों खोली जैसे ओस में भीगता हुआ फूल खिलता है, अथवा जैसे कोए से निकल कर तितली पहली बार अपने पंख खोलती है। उसके लिए यह एक नया अनुभव था। आज यह संसार भी उसे सुन्दर लग रहा था। जिस ने उसे इतनी पीड़ा दी थी। इतने लोगों को आनंदातिरेक से नाचते गाते देखकर उसके भीतर शांति भाव उत्पन्न हो रहा था।

जंगल में शहज़ादा शिराशमिक और चन्द्रा डामर के घोड़े तीव्रता से दौड़ते उसी ओर चले आ रहे थे। बरखा की पहली बूंद पड़ते ही वे अपने महलों से चल पड़े थे। उन्हें यकीन हो गया था कि लल कोई सच्ची जोगन है, जिस की अरदास के कारण इतना भयानक कैह्त समाप्त हुआ। शिराशमिक के दिल में लल का आशीर्वाद लेने की उत्सुकता थी। वह जल्दी से जल्दी कश्मीर का सुल्तान बनना चाहता था। वह देख रहा था, उनके खानदान के तीन सुल्तान

कश्मीर पर राज कर चुके थे लेकिन अभी तक भयमुक्त और निर्विघ्न होकर उनके राज्य की स्थापना नहीं हुई थी। छोटे-मोटे जागीरदार और राजे-रजवाड़े स्थायित्व के लिए खतरा बने हुए थे। हर दूसरे रोज़ कोई-न-कोई बाग़ी किसी-न-किसी तरफ अपना सिर उठा देता था। शहज़ादे के दिल में डर बैठ गया था कि कहीं उसके सुल्तान बनने से पहले विद्रोह ही न हो जाए। उसने सुल्तान बनने से पहले ही अपने मित्र चन्द्रा डामर के साथ मिलकर बाग़ियों को दबाने के मन्सूबे बना लिए हैं। दिल में डर बैठने के कारण जहां कहीं किसी जोगी या पीर-फ़क़ीर का पता चलता है वह उस की दुआएं ले आता है। चन्द्रा डामर ने जिस प्रकार लल के बारे में बताया है वह जान गया है वह कोई पहुंची हुई जोगन है। उसका दिल कह रहा है उस का आशीर्वाद प्राप्त करके उसके दिल की मुराद पूरी होगी।

बारिश और भी तेज़ हो गई थी। जब वे उस जगह पहुंचे तो नाचते गाते लोगों के बीच लल को भी मस्ती में झूमते हुए देखा। वह वस्त्रहीन थी, परन्तु जितने थोड़े कपड़े उसके शरीर पर थे। उनके कारण नंगी भी नहीं थी। उस के नंगेपन की ओर कोई नहीं देख रहा था। वह लल थी, केवल लल।

शहज़ादा शिराशमक और चन्द्रा डामर घोड़ों पर से उतर कर लोगों के क़रीब जाने लगे। धीरे-धीरे लोगों का नाचना-गाना बंद होने लगा। शाही सवारों को देख कर वे आतंकित थे।

बारिश और भी जोर से बरसने लगी।

शहज़ादा और चन्द्र डामर लल के पास आकर खड़े हो गए।

लल भी उन्हीं को देख रही थी। उसने अपने दोनों हाथों की एक अंजली बनाई और बाँहें ऊपर उठा दीं। अंजली में बारिश का पानी भरने लगा। जब अंजली पूरी भर गई तो लल ने उसे शहज़ादे की ओर बढ़ाया और कहा, "इसे पी लो।"

शहज़ादे ने उसकी अंजली का पानी अपनी अंजली में ले लिया और उसे पी लिया। लल ने कहां, "तुम जल्दी राजा बनोगे। राजा बनकर अपनी प्रजा का ख़्याल रखना।"

"ज़रूर" शहजादे के मुंह से निकला।

(डोगरी से अनूदित लेखक द्वारा)

०००

माँ

❐ डॉ० महीप सिंह*

शुचि ने माँ के बालों में कुछ सफेद तार देखे तो धक से रह गई। उसे लगा, माँ ने शायद यह स्वीकार कर लिया है कि वह विधवा हो गई है। डैडी को मरे कुछ ही दिन हुए हैं। कल उनका उठाला है। सारी बिरादरी इक्ट्ठी होगी। आज भी माँ ने सफेद साड़ी पहनी हुई है। शुचि जानती है कल माँ की सफेद साड़ी बिल्कुल लकलकाती सफेद होगी।

शुचि ने इसी वर्ष फिलासफी लेकर बी.ए. आनर्स में दाखिला लिया है। कोई नहीं जानता उसने फिलासफी पढ़ने का फैसला क्यों किया। एकबार बीमार डैडी ने यह पूछा भी था-''तुमने फिलासफी आनर्स करने की बात क्यों सोची? तुम्हारे नम्बर तो इकोनामिक्स में भी बहुत अच्छे थे, हिस्ट्री में भी। तुम पोलिटिकल साईंस भी ले सकती थी।''

शुचि बोली थी- ''जीवन में जब रास्ते सीधे-सीधे, सुलझे-सुलझे दिखाई दें और भविष्य की योजनाओं के जुगनू आस-पास चमकते नज़र आएँ तो वे सारे विषय पढ़ने में अच्छे लगते हैं जो आप बता रहे हैं। लेकिन जब जीवन की गुत्थी उलझी-उलझी नज़र आए और उसका सिरा ढूँढ़ने में परेशानी होती हो तो फिलासफी से ज़्यादा अच्छा विषय दूसरा नहीं है।''

डैडी उसकी बात सुनकर पहले तो मुस्कुराए फिर गंभीर हो गये। शुचि ने उनका व्यंग्य भरा मुस्कुराना भी देखा फिर गंभीर हो जाना भी। उसने दोनों बातों का अर्थ निकाल लिया। इस घर में बरसों से यही दिख रहा है-या तो विद्रूपता से मुस्कुराओ या कुछ सोचने लगो, ऊल-जलूल, बेमतलब, बेसिर-पैर, उलझा-उलझा।

पहले डैडी और मम्मी दोनों ही डाई लगाते थे। डैडी कम उम्र में ही अपने बैंक में डिप्टी जनरल मैनेजर के पद पर पहुँच गये थे। मम्मी ने एक मल्टीनेशनल कम्पनी में पब्लिक रिलेशन असिस्टैंट के रूप में ज्वाइन किया था, फिर पब्लिक रिलेशन और पब्लिसिटी की चीफ मैनेजर बन गईं। बैंक में लोग मिस्टर सरीन का रोब खाते थे और कम्पनी में मिसेज सरीन की उँगलियाँ एक सधे हुए खिलाड़ी की तरह धीरे-धीरे चलतीं थीं।

एक दिन अचानक मिस्टर सरीन ने डाई लगाना छोड़ दिया। देखते-देखते, पहले उनके बाल भूरे हुए फिर सफेदी की खुली घोषणा करने लगे। बैंक में लोगों ने इसे जनरल मैनेजर बनने की योजना का हिस्सा समझा।

पर यह बात न पत्नी की समझ में आई, न बेटी की। शुचि ने बचपन से ही महसूस किया था कि उसके माता-पिता में कोई खास संवाद नहीं है। दोनों की दुनिया में भी ऐसी

* म. 108 शिवाजी पार्क, पंजाबी बाग, न्यू दिल्ली-110 026

कोई सांझ नहीं है कि संवाद का रास्ता ठंडी सड़क बनकर सामने नज़र आने लगे। भाई-बहन के नाम पर शुचि अकेली थी और यह बात उलझी हुई गुत्थी की तरह उसके हाथ में हमेशा थमी रही कि वह अकेली क्यों है, उसका कोई और भाई-बहन क्यों नहीं है। सरीन साहब की अपनी एक भरी-पुरी दुनिया थी, जिसमें सिर्फ उनका बैंक था। एक क्लर्क आखिर कितना महात्त्वाकांक्षी हो सकता है। लेकिन उन्हें बैंक की नौकरी की शुरुआत करते ही एक बात का अहसास हो गया था कि यह बैंक ही वह किला है, जिसकी सीढ़ियाँ उन्हें जीवन-भर चढ़नी हैं। इस चढ़ाई में उनकी नज़र सबसे ऊपर बने दो-तीन गुम्बदों पर ही रहनी चाहिए, महाभारत के उस अर्जुन की तरह जिसे पेड़ पर बैठी चिड़िया की सिर्फ आँख ही दिखाई देती थी और कुछ नहीं।

चालीस की आयु पार करते ही वे सधे कदमों से बढ़ते हुए डिप्टी जनरल मैनेजर की पोजीशन पर पहुंच गये थे। अब जी.एम. बनना और ई.डी. की कुर्सी पर नज़र गढ़ाए रखना, पेड़ पर रखी चिड़िया की आँखें थीं।

सरिता सरीन शादी से पहले सिर्फ सरिता थी। उसके पिता भी कोई सरनेम लगाते होंगे, लेकिन उसे सरिता रहना ही अच्छा लगता था। सारी डिग्रियाँ उसने सरनेम के बिना ही प्राप्त कर ली थीं और नौकरी भी।

पर इस बात को कौन झुठला सकता था कि वह मिसेज़ सरीन हैं, यशवंत सरीन की पत्नी हैं।

इस बात ने पति-पत्नी के बीच कुछ कसैलापन पैदा कर दिया था। हर मौके यशवंत सरीन परिचय कराता-मेरी पत्नी-सरिता सरीन..... । हर मौके पर वह अपना परिचय देती-आय एम सरिता ...... मीट माई हास्बैंड... मिस्टर यशवंत सरीन .....।

''तुम्हें अपने आपको सरीन कहने में झिझक क्यों होती है.....?'' एक दिन उसने पूछा था।

उसका जवाब था-''मुझे सरिता बने रहना पसंद है। मैं कभी सूरज प्रकाश ढल की बेटी सरिता ढल नहीं बन सकी थी.... न ही यहाँ यशवंत सरीन की बीबी सरिता सरीन बन कर जीना मुझे जरूरी लगता है।

''तुम मेरी बीवी नहीं हो ....? यशवंत सरीन की बीवी .....?'' वह कुछ हड़बड़ाया था।

''इससे मुझे इन्कार नहीं है। न ही मुझे किसी तरह का संकोच है। लेकिन सरिता रहकर भी मैं आपकी बीवी हूँ .... शुचि की माँ हूँ। क्या सरीन की मोहर लगाना इस रिश्ते के लिए ज़रूरी है?''

यशवंत सरीन को हड़बड़ाहट बौखलाहट में बदलने लगी-''सभी लड़कियाँ पति के घर जाकर उसका सरनेम ग्रहण कर लेती हैं। पहले यह भी होता था कि ससुराल आने पर लड़की का नाम भी बदल दिया जाता था।''

''यह बात बिल्कुल ठीक है, उसी तरह जैसे हर नदी आगे चल कर किसी बड़ी नदी में मिल जाती है या समुद्र में गिर कर गुम हो जाती है। लेकिन मैं सरिता बनकर ही आप के साथ-साथ चलूँ, बिना जज़्ब हुए तो आपको क्या एतराज़ है।''

यशवंत की समझ में नहीं आया कि यह क्या जवाब है। थोड़ा खीझ कर बोला था– ''तुम्हें मालूम है जो सरिताएँ किसी बड़ी नदी से नहीं मिलती या समुद्र में नहीं गिरतीं, वे सूख जातीं हैं।''

सरिता एकदम सोच में डूब गई थी। ऐसा लगा था कि वह किसी गहरे ऊहा-पोह में आ गई है। फिर बड़ी आहिस्ता-आहिस्ता बोली थी–''अपनी पहचान लेकर बहने और फिर सूख जाने में क्या बुराई है। गंगा में मिलकर अपनी पहचान डूबो देने वाली जमुना को भी लोग याद करते हैं और उस सरस्वती को भी जो लम्बी राहों में पता नहीं कहां गुम हो जाती है।''

शुचि के लिए यह सब कुछ बहुत अनबूझ-सा था। उसने हायर सकैण्ड्री शुचि सरीन बनकर पास की थी और कालेज में भी इसी नाम से दाखिल हुई थी। इस स्थिति में उलझाव कहां है?

उलझाव सिर्फ इस बात में ही नहीं था। पता नहीं और क्या-क्या एक दूसरे में उलझ गया था।

शुचि को मूवी देखना अच्छा लगता था। बचपन में वे अपने मम्मी-डैडी के साथ जाती थी। यह देखकर उसके अंदर हुमक पैदा होती कि दोनों ही कितने स्मार्ट दिखते हैं। मम्मी तो सचमुच ऐसी लगती है जैसे कोई कुँवारी लड़की हो.... ज़्यादा-से-ज़्यादा नव-विवाहित हो। जब वह कुछ और बड़ी हुई तो उसकी सहेलियाँ समझती, वह उसकी बड़ी बहन है। जब वह मैट्रिक की परीक्षा पास कर गई तो उसे पता लगा मम्मी और डैडी दोनों ही डाई लगाने लगे हैं।

एकाएक डैडी ने डाई लगाना बंद कर दिया। उनके बालों ने जब अपना असली रंग दिखाना शुरू किया तो माँ-बेटी दोनों ही चौंकी थीं। शुचि बहुत मज़ा लेकर बोली थी– ''डैडी, मैं नहीं चाहती कि आप इतनी ज़ल्दी बूढ़े लगने लगें। जब मेरी सहेलियाँ कहती हैं कि तुम्हारे डैडी तो तुम्हारे बड़े भाई जैसे दिखते हैं तो मुझे बहुत अच्छा लगता है।''

मम्मी अपने आफिस जाने को तैयार हो रही थीं। शुचि ने उनकी तरफ देखा-कौन कह सकता है कि ये उन्नीस साल की लड़की की मां है। उनकी साड़ी से उनका गोरा गदराया शरीर जैसे पिंजड़े में बंद गोरे-चिट्टे-मोटे खरगोश की तरह बाहर निकल कर कुलाचें भरने को आकुल हो रहा था।

शुचि की बात सुनकर वह चौंकी थी। उसने एक बार पूरी नज़र भरकर पति की तरफ देखा था।

''डाई आपको कुछ तकलीफ देने लगी है ?'' उसने पूछा था।

''नहीं ऐसी कोई बात नहीं है।'' डैडी ने बड़े अनमने ढंग से उत्तर दिया था–''बस लगता है, ये बेकार का झंझट है। जो हो रहा है वह हो... उस पर मुलम्मा चढ़ाने की क्या ज़रूरत है ?''

मम्मी ने अपनी साड़ी की सलवटों पर हाथ फेरते हुए कहा–''ये ज़िंदगी क्या मुलम्मों के बगैर चलती है ? इस्तरी किये हुए कपड़े पहनना भी तो मुलम्मा है।''

कहती हुई वह बाहर निकल गई थी।

शुचि सोचती रही कहीं-न-कहीं कुछ गड़बड़ है। मम्मी-डैडी आपस में लड़ते होते तो बात समझ में आ जाती। सभी तरह की लड़ाइयाँ अपने साथ जैसे-तैसे कारणों के बड़े-बड़े झंडे झुलाती हुई आतीं हैं। उसने कभी इन्हें ऊँचा बोल बोलते भी नहीं देखा था। कभी इन्हें आपस में बहुत जोर से हँसते, ठहाके लगाते भी नहीं देखा था। ऐसे विषय बहुत थोड़े थे, जिन पर आपस में बहस करते या बातें करते थे। डैडी के बैंक में बहुत ''पालिटिक्स'' थी। सभी अफसर एक-दूसरे को काटने में लगे रहते थे। सभी चेयरमैन के नूरे नज़र बनना चाहते थे। सभी उन्नति की सीढ़ी पर एक-दूसरे को धकिया कर आगे बढ़ना चाहते थे।

पहले शुचि देखती थी–डैडी मम्मी से अपने बैंक की राजनीति पर बात करते थे। मम्मी भी अपने आफिस की बातें डैडी से करती थी। ऐसी ही बातों-बातों में एक बार मम्मी ने बताया था, उसकी कम्पनी से नया मैनेजर इंग्लैंड से आया है.... बिल्कुल छोकरा-सा है.... वेरी हैंडसम.... वेरी स्मार्ट।

फिर उसी कम्पनी में मम्मी की तरक्की का सिलसिला शुरू हुआ। उसने पब्लिक रिलेशन्स असिस्टेंट के रूप में नौकरी शुरू की थी। जल्दी ही वो असिस्टेंट मैनेजर बन गई। देखते-देखते इस सरपट दौड़ में उसका घोड़ा आगे दौड़ने वाले कितने ही घोड़ों को पछाड़ता हुआ आगे निकल गया। वह पब्लिक रिलेशन्स और पब्लिकसिटी डिपार्टमेंट की फुल फ्लैजेड मैनेजर बन गई।

उस दिन शुचि को अपने डैडी के चेहरे पर दो सफेद खूटियाँ दिखाई दी थीं, जिनकी तरफ उसका पहले ध्यान नहीं गया था। मम्मी ने बताया था, उनकी मल्टीनेशनल कंपनी अब उन्हें ।जितना वेतन दे रही है वह डैडी के वेतन से भी ज़्यादा है।

डैडी अक्सर छह-सात बजे तक घर आ जाते थे। उन्हें कभी-कभार देर होती थी और जब भी देर होने की संभावना होती, वे फोन करके सूचित कर दिया करते थे। लेकिन अब मम्मी तो हर दिन ही देर से आती थी। नौ बजे आना तो आम बात थी। कभी-कभी कहती थी–पब्लिसिटी और पब्लिक रिलेशन्स की इंचार्ज होना बड़े झमेले का काम है। अपनी पार्टियों के बॉसेज को इंटरटेन करना उनकी ड्यूटी का हिस्सा है।

फिर पता नहीं क्या हुआ, डैडी का स्वास्थ्य गिरने लगा। उन्हें एक बड़ा सख़्त झटका लगा था। जनरन मैनेजर के इंटरव्यू में उनका सलेक्शन नहीं हो पाया, जिसकी उन्हें पूरी उम्मीद थी।

इस पद के लिए मेहता को चुन लिया जाना उन्हें बहुत खला था, क्योंकि सारे बैंक में यह चर्चा थी कि मेहता चेयरमैन का बहुत मुँह लगा है और उसकी बीवी भी बहुत खूबसूरत है।

पर ऐसा नहीं लगता था कि ऐसी अनहोनी इतनी जल्दी घट जाएगी। डैडी उस दिन दफ्तर से आए तो बड़े थके-थके लग रहे थे। शुचि ने उन्हें पानी पिलाया था फिर चाय पिलाई और पूछा था-''डैडी, आप बहुत थके-थके से लग रहे हैं... तबियत ठीक है ना?''

डैडी ने इतना ही कहा था... ''बेटा, मैं ठीक हूँ।''

यह कह कर वे अपने बैडरूम में जाकर लेट गये थे।

उस दिन मम्मी बहुत देर से आई थी। विदेश से कोई डेलीगेशन आया हुआ था। उसके ठहरने, खाने-पीने की सारी व्यवस्था मम्मी को ही देखनी थी। आधी रात को जब वह लौटी, डैडी सो रहे थे। शुचि भी अपने कमरे में चली गई थी। नौकरानी ने सिर्फ इतना बताया था कि साहब कुछ बीमार से लग रहे थे। थोड़ा-सा खाना खा कर जल्दी सो गये।

सुबह डैडी जागे ही नहीं।

बेड टी के समय पता लगा कि रात में ही किसी समय प्राण निकल गये थे।

डैडी का उठाला हो गया। बिरादरी के लोग, मम्मी के दफ्तर के लोग बड़ी संख्या में आए थे। सभी अफसोस करते हुए वापिस चले गये।

मम्मी को सप्ताह से अधिक हो गया था, दफ्तर नहीं गई थी। उठाले के दूसरे दिन भी नहीं गई तो शुचि को कुछ अटपटा लगा। वह तो डैडी की मृत्यु के तीसरे दिन से ही कालेज जाने लगी थी। आज वह कालेज से वापस आई तो देखा, मम्मी बड़ी गुमसुम अपने कमरे में लेटी हुई हैं। वह उनके पास जाकर बैठ गई। सबसे पहले उसकी नज़र उनके बालों पर पड़ी। कितनी सफेदी झलक रही थी उनमें।

''मम्मी...'' वह कुछ कहने ही जा रही थी कि उसने देखा उनकी आँखें छलछला आई हैं। उसने उनके दोनों हाथ अपने हाथों में ले लिये। मम्मी एकदम फफक उठीं... ''शुचि तेरे डैडी की मौत की मैं जिम्मेदार हूँ।''

''क्या कहती हैं मम्मी.... ?'' वह ऐसे चौंकी जैसे बिच्छू ने डंक मार दिया हो-- ''आप जिम्मेदार क्यूँ हैं ?''

''मैं उन्हें पल-पल टूटता.... पल-पल मरता देखती रही.... मैंने कुछ नहीं किया।'' उनकी आँखों से आँसू बहते चले जा रहे थे।

शुचि को लगा, जैसे मम्मी ठीक कह रही हैं। वह उसका हाथ थामे चुपचाप बैठी रही। नौकरानी आकर चाय रख गई। कितनी ही देर तक दोनों बिना कुछ बोले, धीरे-धीरे चाय पीती रहीं।

मम्मी दूसरे-तीसरे और चौथे दिन भी दफ्तर नहीं गई। इन तीन दिनों में भी घर में माँ-बेटी में कोई संवाद नहीं हुआ। टी. वी. भी नहीं चलाया गया। मम्मी अपने कमरे में लेटी कबीर के कैसेट सुनती रहती और शुचि अपने कमरे में लेटी कोई पॉप म्यूजिक। नौकरानी रसोई में उलझी रहती, कभी घर की सफ़ाई करती दिखाई देती। ऐसा लगता, जैसे सारे घर से शब्द गुम हो गये हैं। बोलने, बतियाने का सारा काम सिर्फ सांसें कर रही हैं।

मम्मी ने जब शुचि को काफी देर तक सोते देखा तो झिंझोड़ा-''शुचि... बेटा-कालेज नहीं जाना है क्या ?''

वह उठकर बैठ गई-''नहीं।''

''क्यों ? छुट्टी है क्या ?''

''नहीं... कोई छुट्टी नहीं है। पर आज मैं कालेज नहीं जाऊँगी।''

''क्यों ?''

''इसलिए कि आज आप के साथ मूवी देखने जाऊँगी। अप्सरा में ऐसी पिक्चर लगी है जिसने इस बार नौ एकैडमी अवार्ड जीते हैं।''

मम्मी मुस्कुराई-''तू अपनी किसी सहेली को बुला ले... उसके साथ चली जा।''

शुचि ने उसके गले में अपनी बाँहें डाल दीं... ''तुमसे अच्छी मेरी कोई सहेली नहीं है मम्मी।''

नाश्ता करने के बाद शुचि ने एक प्लेट में डाई घोली--''मम्मी, ज़रा इधर आना और हाँ, चुपचाप आकर यहाँ बैठ जाओ।''

वह जैसे बिल्कुल अबोध बच्ची बन गई। ड्रेसिंग टेबल के सामने बैठती हुई कुछ लाड भरी खीझ में बोली--''ये क्या कर रही हो तुम ?''

''आपके बाल ठीक कर रही हूँ.... और हाँ.... कल से आप अपनी ड्यूटी ज्वाइन करेंगी।''

ooo

और! धूप जम गई

❑ प्रमिला वर्मा*

जिलाधीश मिस काजल सिंघानिया ने पर्ची उठाई, पढ़ा और चौंक कर खड़ी हो गई, पर्ची में मां का नाम था। उसने तुरन्त उन्हें अंदर बुला लिया, मां सामने थीं, बूढ़ी....कमज़ोर......दुबली......पतली।

''जी कहिए?'' वह जानकर भी अन्जान बनी रही।

''बेटी! मैं तुम्हारी....'' कहते हुए वे रो पड़ीं।

''बैठिए! बैठिए! इस तरह रोइए नहीं, शायद आप कुछ कहना चाहती हैं?''

''मैं तुम्हारी मां जैसी.....'' आगे शब्द टूट गए।

''मां जैसी नहीं, आप मेरी मां ही हैं।'' कहना चाहा जिलाधीश काजल ने, लेकिन गले में वाक्य अटक गए।

ठाकुरों की विशाल हवेली से उस गांव की दूरी पच्चीस किलोमीटर थी जहां नदी के पास समतल हिस्से में वह अपनी नानी के साथ रहती थी, नानी दाई का काम करती थीं, जिन्हें सब मंगू दाई कहते थे। वहीं एक कच्ची बनी दस बाई दस की कोठड़ी थी और कालिखपुती राख से भरी छोटी-सी रसोई जिसमें पेड़ों के नीचे से बटोरी गई छोटी-बड़ी लकड़ियां डाल कर चूल्हा जलता और नानी उसे दाल के साथ गर्म-गर्म रोटियां खिलाती। जब नानी के पास कोई केस घर पर आ जाता तो उसे चूल्हे के पास रसोई में सोना पड़ता। कभी-कभी ऐसे केस भी होते जिसमें अनचाही छोटी उम्र की लड़कियां भी होतीं जिन्हें अमीर घरों के माता-पिता समाज से अपनी इज्ज़त बचाने के लिए मंगू दाई यानि उसकी नानी के पास लाते। नानी जिनके हाथ जचकी कराने में, बच्चा गिराने में और जिन्हें लड़की नहीं चाहिए उनकी गर्भ में पल रही लड़की को मौत की नींद सुलाने में सक्षम थे।

बहुत सालों के बाद जब वह समझदार हो गई थी तब उसे नानी ने अपने धन्धे के बारे में सब कुछ बता दिया था।

ऐसे ही एक दिन नानी के पास केस आया चौदह वर्षीय लड़की का, जिसे चार महीनों का गर्भ था। पिता एक सफल व्यवसायी थे और माँ को क्लब किटी पार्टीज़ और अपनी सहेलियों से फुर्सत नहीं थी। बेटी के क़दम बहकने लगे। वह घर में अकेली ही थी। वीडियो

* 3-शालिनी विहार, गादिया विहार के पीछे, शहनूर वाड़ी रोड, औरंगाबाद-431005 (महाराष्ट्र)

पर अश्लील फिल्में देखने लगी, उसे अपने भीतर उत्तेजना महसूस होती। हालात ऐसे हुए कि घर के जवान नौकर ने उसकी उत्तेजना को महसूस किया और घर में टी.वी. देखते हुए रंगरलियां मनाना शुरू कर दिया। बाद में नौकर भाग गया, छोटी-सी लड़की को समझ में नहीं आया कि वह गर्भवती हो चुकी है। लड़की की मां ने मंगू दाई के पैर पकड़ लिए। नानी लड़की को लेकर कमरे में घुसी और दस मिनट के बाद वापिस लौटी। बोली कुछ नहीं हो सकता गर्भ बड़ा हो चुका है तब उसके पिता ने नानी को कहा कि ''हम तुम्हें मालामाल कर देंगे, इस नारकीय जीवन से लड़की को निकालो।'' तब नानी उबल पड़ी थीं कहा ''ज़हर दे दो लड़की को...वैसे भी सैंकड़ों सालों से लड़की को मारा जाता रहा है, बड़ी लड़की मारो, छोटी या भ्रूण हत्या क्या फर्क पड़ता है? जब भ्रूण हत्या पाप नहीं तो लड़की की हत्या भी कैसे पाप हो सकती है, जान तो दोनों में ही होती है।'' पिता गिड़गिड़ा रहे थे ''मंगू दाई कुछ भी करो...मगर सम्भाल लो....।'' नानी बड़बड़ा रही थी ''मां-बाप अपने-आप में जीते रहे......फिर लड़की का क्या दोष? वह क्या समझे क्या भला है क्या बुरा, यदि मां लड़की की ओर ध्यान देती तो? अब मुसीबत लड़की की......यदि वह मर गई तो?'' मां सिर नीचे झुकाए बैठी थी। पिता के साथ शायद पहले ही झड़प हो चुकी थी, सो डरी हुई भी थी।

उनकी यह इकलौती औलाद थी, समाज में उनकी इज्ज़त है। मां महिला संगठन की अध्यक्ष भी है। आज उनके घर में यह मुसीबत आ गई थी। कल तक वह भाषण देती थी कि मां को अपने बच्चों के लिए वक्त निकालना चाहिए, बच्चों के दोस्त बनकर रहना चाहिए और आज वो स्वयं ही......? सचमुच नसीहतें देना किताबी बातें होती हैं।

तब काजल सातवीं में पढ़ रही थी। नानी ने हमेशा उसे अपने बल पर पढ़ाया और अच्छे से रखा। नानी देख रही थी कि बच्ची बुद्धिमान है। पहली से छटी तक वह कक्षा में प्रथम आई है। हालांकि नानी ने उसे कैसे इस कक्षा तक पढ़ाया स्वयं उन्हें भी आश्चर्य होता है। यदि लड़की बेतहाशा ज़िद न करती कि ''उसे भी स्कूल जाना है'' तब तक वे सोच चुकी थीं कि उसे अपना सहयोगी बनाएंगी। उनकी उम्र हो गई थी और हर काम उनसे होता नहीं था। गांव में जचकी हो तो गांव की व घर की औरतें सहयोग करती थीं। तब नानी को इतना काम नहीं करना पड़ता था। लेकिन घर में यदि कोई केस आ जाए, तो सारी मुसीबत उन्हीं पर। यहाँ तक कि कमरे की गंदगी भी उन्हें ही फेंकनी पड़ती। फिर वे नदी में नहाती। ऐसे ही अमीर घर के लोग कभी उनके सफल काम के एवज़ में बकरी दे जाते, कभी साल-भर का राशन भर देते। कोई गरम कपड़ा, तो कोई रज़ाई दे जाता। एक मारवाड़ी परिवार ने तो अपनी लड़की को नई ज़िंदगी मिलने की खुशी में चांदी के बर्तन दे डाले। वह नानी के किस काम के। उन्होंने वे काजल के ब्याह के लिए सहेज कर रख दिये। वे ट्रंक में एक टीन के डिब्बे में काजल के ब्याह के लिए रुपये भी जोड़ती रहतीं। वे चाहती थीं कि लड़की उनकी विरासत संभाल ले और घर-घर जाकर जचकी करवाए। उन्होंने भी तो अपनी सास से यह सब सीखा था। बल्कि इज्ज़तदार घरानों में लड़की के पैदा होते ही मार देने के गुर भी जाने थे। पन्द्रह वर्ष की उम्र में जब वे ब्याह कर आई थीं तो अपनी सास के साथ पहली बार सरपंच की पत्नी की जचकी कराने गईं थीं। जहाँ पहले

से ही यह तय था कि लड़की होगी तो उन्हें ही उसे खत्म करना होगा, बल्कि दफ़नाने की जिम्मेदारी भी दाई की होगी। सरपंच की पत्नी ने कहा था कि इस घर में बेटी नहीं होगी ऐसा सरपंच के पिता जी का आदेश है। उनके भी कोई बेटी नहीं है। यहां से लड़कियां डोली में बैठकर नहीं जाती, बल्कि ब्याह के लाई जाती हैं। यह उनकी इज्ज़त का सवाल था। चार बेटों के बाद लड़की का जन्म तो खुशियां देगा, लेकिन यहां तो मारने का आदेश था। दाई से पेट कहां छुपता है उसने बता दिया था कि लड़की होगी। सरपंच की पत्नी ने जब लड़की को जन्म दिया तो ससुर ने दाई की मुट्ठी में नोट भरते हुए कहा कि ठिकाने लगा दो। नानी की सास ने अपनी बहू से पानी से भरी बाल्टी लाने को कहा और नवजात शिशु की दोनों टांगे पकड़कर उसे बाल्टी में उल्टा डुबो दिया। यह वीभत्स दृश्य देखकर पन्द्रह वर्षीय किशोर बहू चीख पड़ी और रोने लगी। नन्हीं-सी जान को छटपटाते और फिर शांत होते उसने छोटी उम्र में देखा था। फिर नानी के लिए यह आम बात हो गई। कभी गीला तौलिया नाक और मुँह पर रख देना तो कभी अफीम चटाकर मौत की नींद सुला देना।

धीरे-धीरे मंगू दाई जान गईं कि लड़की का जन्म पाप है, इसीलिए उसे मार दिया जाता है। सास के साथ वे यह सब काम सीखती गईं और पारिवारिक विरासत को संभालते हुए स्वयं संतान विहीन ही रहीं। ऐसा नहीं था कि वे बांझ थीं, लेकिन उनके मरी हुई संतान पैदा हुई थी। फिर बीमारी से पति और बाद में सास भी मर गई।

कुछ वर्ष तक वे इस घर में अकेली रहती रहीं। सात वर्ष के अकेलेपन के बाद अचानक उनकी ज़िंदगी में काजल आ गई तो उनकी ज़िंदगी खुशी से भर उठी।

काजल अमीर-ठाकुर की बेटी है। एक ही गांव में नहीं, कई गांवों में ठाकुर की मालगुज़ारी रही। काजल बड़े ठाकुर के मंझले बेटे की संतान है। ठाकुर के तीनों बेटों के बेटे ही हुए। काजल से पहले दो बेटे और बाद में दो बेटे और पैदा हुए। ठाकुर का खानदान अंग्रेजों के समय से मालगुज़ारी करता आ रहा है। गरीब किसानों पर वे आज भी हकूमत करते हैं। जिस गांव में ठाकुर रहते हैं, उसकी कई एकड़ भूमि पर उनकी हवेली और विशाल बगीचा तथा घुड़साल है। हवेली के तलघर के एक कमरे में बहुमूल्य हीरे-जवाहरात, सोने-चांदी के सिक्के खज़ाने के रूप में रखे हैं। कुल मिलाकार ठाकुरों की हैसियत किसी बड़े ज़मीनदार से कम नहीं थी।

ठाकुर की मंझली बहू तीसरी बार गर्भवती हुई थी। बड़ी बहू के पांच बेटे थे जो किशोर हो रहे थे। लेकिन घर के मुखिया बड़े ठाकुर जवान ही नज़र आते थे। वे घोड़े की सवारी करते थे और जहां भी जाते गांव वाले उन्हें झुक-झुककर प्रमाण करते थे। दादा ठाकुर अर्थात् बड़े ठाकुर ने ही मंगू दाई को बुलाकर कहा था- "क्या बालक ही जन्मेगा?" मंगू दाई डर कर गूंगी जैसी बन गई थीं। ठाकुर समझ गए, बोले- "देखो मंगू दाई तुम जानती हो इस खानदान का डेढ़-सौ वर्षों का इतिहास, यहां से सिर्फ बारात गई है, सो ध्यान रहे, किसी को कानों-कान खबर न हो, कहना कि मरी संतान जन्मी है।"

''जी'' उसकी मुट्ठी में कुछ सौ के नोट थे।

इधर मंझली ठकुराइन ने पति के पैर पकड़ लिए। कहा- ''मैंने इस आंगन में बच्ची के पायजेब की आवाज़ सुनी है, हम उसे पढ़ाएंगे, अब ज़माना बदल गया है। मैं उसे काजल का डिठौना लगाऊंगी, लाल रिबिन उसकी चोटी में बांधूंगी... ठाकुर! उसका जीवन मेरी झोली में डाल दो।'' मंझली ठकुराइन के समक्ष बड़ी ठाकुराइन की नन्हीं बेटी थी जिसे इसी मंगू दाई की सास ने अफीम चटा दी थी, मंझली ठकुराइन के पैर कांप रहे थे। लेकिन पति ने कहा कि ''पिता जी का हर वाक्य इस खानदान में आदेश की तरह होता है, यह कुछ नहीं कर सकते।''

इधर मंझली ठकुराइन की आंखों की नींद उड़ गई। दाई ने कहा था ''लड़की ही है'' वह आंचल मुंह में दबा कर रो पड़ती, जब पेट का शिशु हिलता-जुलता लातें मारता। कभी पैर इधर तो क्षणांश में सिर उधर... काश! यह बेटा ही हो वह सोचती। उनकी कल्पना में नन्हीं बच्ची चांदी की पायजेब, हाथों में कड़े, कमर में करधनी पहने हवेली में डोलती दीखती.... मां! मां! मुझे बचा लो। कोख का शिशु मानो उनसे भीख मांग रहा हो। और तभी उन्होंने फैसला कर लिया कि यदि सचमुच लड़की का ही जन्म होगा तो वह उसे मारने नहीं देंगी। मारे चिन्ता के आठवें महीने ही मंझली ठकुराइन प्रसव वेदना से चिल्ला उठीं। हवेली में हड़कंप मच गया। मंगू दाई बुला ली गई। दरवाज़ा बंद हुआ तो ठकुराइन ने मंगू दाई के पैर पकड़ लिये।

''अरे! यह क्या करती हैं ठकुराइन? पाप में डुबो रही हैं?'' मंगू दाई ने कहा।

''मंगू दाई यदि यह शिशु लड़की ही है तो इसे बचाना ही होगा।'' मंझली ठकुराइन ने कहा।

''क्या?'' मंजू दाई डरकर कांप गई और मुंह खुला-का-खुला रह गया।

''हाँ! मंगू दाई मैं सारी ज़िंदगी तुम्हें इसे पालने का पैसा देती रहूंगी, लेकिन तुम मेरे शिशु को बचा लो।'' कैसा अजीब आग्रह था। रोते शिशु को वह बाहर कैसे ले जाएंगी। बड़े ठाकुर को क्या उत्तर देंगी, बच्ची की मृत्यु के पश्चात् उसे ज़मीन में गाड़ने का आदेश था, वह भी हवेली के बाहर पड़ी बंजर भूमि के हिस्से में।

''नहीं, ठकुराइन यह जोखिम मैं नहीं ले सकती।'' लेकिन ठकुराइन ने मंगू दाई के पैर नहीं छोड़े। वह क्षणांश में ही फैसला ले चुकी थी कि ठीक है, फिलहाल वह शिशु को अपने घर ले जाएगी। लेकिन मंगू दाई आश्चर्य में डूबी थी कि कहां घर की औरतें वो स्वयं चाहती थीं कि लड़की को मार दिया जाए और ये मंझली ठकुराइन....। अठमासी लड़की ने जन्म लिया। मंगू दाई ने प्रसूता और बच्ची की रक्षा की और उसे मां की छाती से चिपकाकर भरपूर दूध पिलवा दिया और बड़े ठाकुर को खबर भिजवा दी कि जैसा आपने कहा था वह

काम हो गया है। मंगू दाई ने बच्ची को कपड़े में लपेटा और सुई की नोक बराबर अफ़ीम चटाकर हवेली से बाहर का रास्ता बच्ची की गहरी नींद में लगभग दौड़ते हुए पार किया।

दूसरे दिन सुबह लड़की को नहलाकर जब मंगू दाई ने उसे काजल का टीका लगाया तो अचानक ही उसके मुंह से निकला ''काजल''। बस यही नामकरण लड़की का हो गया। लड़की दूध जैसी गोरी और तीखे नयननक्श की थी। कई बार ठकुराइन अपना ही दूध कटोरे में निकालकर खेत की मेंड़ पर मंगू दाई को सौंप देती। कुछ वर्ष बच्ची के लिए रुपये भी ठकुराइन देती रही। बाद में मंगू दाई ने कुछ भी लेने से मना कर दिया। कहा कि वह सक्षम है अपनी काजल को पालने में।

मंगू दाई को नहीं पता था कि जबरदस्ती बचाई गई इस बच्ची से उनकी दुनिया भरी-पूरी हो जाएगी। अभी तक तो वह दो दर्जन से अधिक लड़कियों को मार चुकी थी और अब मंगू को लगता है कि इस लड़की को बचाकर उसे जीवन-दान देकर मानो उन सभी लड़कियों की आत्मा ने उन्हें माफ़ कर दिया है। सचमुच वे न कभी बीमार पड़ी, न ही रात-बिरात पथरीली सड़क पर आते हुए कभी उन्हें ठोकर लगी, न किसी सांप-बिच्छू ने उन्हें काटा. बस एक दिन बीमार पड़ी और चल बसीं। तब काजल देहरादून में बी.ए. प्रथमवर्ष में पढ़ रही थी।

यह शिक्षा का दान दिया था उसी चौदह वर्षीय बेटी के माता-पिता ने। जब सारी रात वह उस नन्हीं जान से उसका गर्भ गिराने में जूझी थीं और आधी रात को किसी जड़ को घिसकर उसे चटाकर बेहोश करके गर्भ गिराने में सफल हुई थीं।

सुबह लड़की ने जब आंखें खोली थीं, तब मंगू दाई ने उसके माता-पिता को कहा था-''बहुत सहा है बच्ची ने, शरीर में प्राण बचे हैं, सेहत आप लोग-बना लेना।''

तब पिता ने खुश होकर कहा था, ''मांगो मंगू दाई? जो कहोगी वही इनाम दूंगा।

तब मंगू दाई ने कहा था-''दे सको-लाला! तो इस बच्ची को विद्या का दान दे दो! मैं देखती हूं, यह पढ़ना चाहती है, लेकिन मैं कैसे पढ़ाऊं?''

उस दूध जैसी सफेद बच्ची को लाला निहारते रह गए। कीचड़ में मानो सफेद कमल... ''किसकी बच्ची है'' उन्होंने पूछा ''मेरी सिर्फ मेरी'' मंगू दाई ने कहा।

''ठीक है, कुछ नहीं पूछूंगा'' और हफ्ते-भर में ही बगैर पट्टी की भारी स्लेट और फटे बस्ते से मुक्ति पाकर वह देहरादून के अमीरों के स्कूल में पढ़ रही थी।

ooo

''बोलिए?'' जिलाधीश काजल ने सामने बैठी उनकी मां से पूछा।

''बेटा! मैं तुम्हारी मां हूं।''

''जानती हूं मां! लेकिन मेरी मां तो मंगू दाई थी जो अब इस दुनिया में नहीं है!''

''मैं मजबूर थी बेटी, हमें माफ कर दो। तुम्हारे पिता शर्मिन्दा हैं, वे तुम्हें अपनाना चाहते हैं। पलंग पर लेटे अंतिम सांसें गिनते तुम्हारे दादा जी, सिर्फ एक बार तम्हें देखना चाहते हैं। वे तुमसे माफी मांगना चाहते हैं।''

कुछ रुक कर वह पुनः बोली- ''जानती हो बेटी, मुझे तो मालूम था कि तुम देहरादून में पढ़ रही हो, दूर-ही-दूर से तुम्हें देखा भी करती थी। लेकिन जब तुम्हारे जिलाधीश बन जाने की खबर सुनी तो मैं खुशी से पागल हो गई और अपने को रोक नहीं सकी। तुम्हारे पिताजी को तुम्हारे जिलाधीश बन जाने की सूचना दी। जंगल के आग की तरह यह खबर दूर-दूर तक फैल गई। तबसे तेरे पिता तुझ से मिलने को उतावले हैं। दादा जी आशीर्वाद देना चाहते हैं तुम्हें। जानती हो बेटी जिस दौलत पर इन ठाकुरों को गर्व था, उसी दौलत को जेठ जी के बेटों ने तथा तुम्हारे चारों भाइयों ने बुरी तरह लुटाया है। थोड़ी-बहुत ज़मीन और जर्जर हवेली के सिवा कुछ नहीं बचा।''

''और-मां, मेरा एक भाई तड़ीपार है, एक जेल में बगैर सजा पाए बंद है। ताऊ जी के बेटे पुलिस से छुपते घूम रहे हैं। दोनों छोटे भाई निकम्मे बिना पढ़े-लिखे गांव की औरतों-लड़कियों को छेड़ते ताऊ जी के बेटों की तरह नाम रोशन कर रहे हैं। '' कहते हुए हांफ गई थी जिलाधीश काजल। ''लेकिन मां वे बेटे कम-से-कम पुरुष तो हैं। दादा जी, ताऊ जी, पिता जी, काका जी की नाक तो ऊंची है न? मां! यह क्या कम है?'' काजल की रोष भरी आवाज़ या हृदय का दुःख बाहर बैठे मंझले ठाकुर ने भी सुना। ''मां! ठाकुरों से कहो उन्हें किस बात का गम है? पुत्र तो पुत्र ही होता है न, भले ही वह जेल में हो, या तड़ीपार।''

गांव से ज़िला बने इस जिले की जिलाधीश है वह बल्कि पहली पोस्टिंग उसने यहीं की मांगी थी, सभी भाइयों की दुर्दशा की खबर तो उसे मिल हीं चुकी थी, अब बहुत कुछ उसके हाथ में था, तो ठाकुर घराना उसकी ओर अपेक्षा भरी दृष्टि से देख रहा था। वह हिकारत से मुस्कुरा दी और कहा- ''मां! आप चाहें तो मेरे साथ सदैव रह सकती हैं, आप एक महान नारी हैं मां! लेकिन मुझे आपके खानदान के पुरुषों से नफरत है, न मैं कभी अपने पिता से मिलूंगी, न दादा जी को देखने हवेली जाऊंगी। यह मेरी दृढ़ प्रतिज्ञा है मां... आप मुझे क्षमा करें। मेरे वजूद की जिन्होंने हत्या करनी चाही, उनके दर्शनों से क्या मुझे ईश्वर की प्राप्ति होगी?''

मां शिथिल कदमों से जिलाधीश काजल के कमरे से बाहर निकल रही थी। बाहर सिर झुकाए जिलाधीश काजल के ठाकुर पिता बरामदे में पड़ी उस धूप के टुकड़े को निहार रहे थे जो जम चुकी थी।

०००

पाषाण

❐ चांद 'दीपिका'

बाहिर हड्डियां सिहरा देने वाला शीत पड़ रहा था। हिमपात भी हो रहा था। गर्म बुखारी के पास आग तापते कुणाल की कंपकपी छूट रही थी। हैरी के आमंत्रण पर कुणाल यूनिवर्सिटी का काम निपटा सीधा उसके घर चला आया था। यूनिवर्सिटी से ज़ब वो निकला था तो अच्छी खासी धूप निकली हुई थी। इंग्लैंड के मौसम पर किसी का वश चलने से रहा। भारत के गणित के विपरीत यहां के मौसम का बाबा आदम ही निराला था।

''चाय.....'' हैरी के कंठस्वर से उसकी चेतना लौटी।

''कितना ठन्डा और जमा देने वाला मौसम है'' कुणाल के मुँह से अनायास निकला।

''Yah (यॉ)'' हैरी ने चाय बना कुणाल के आगे सरकाते हुए उत्तर दिया।

''तुम पहली बार इन्डिया छोड़कर आया इसलिए घबरा गया। यहाँ तो यह चलता रहता है।'' हैरी ने एक बार खिड़की का पर्दा हटा शीशे के उस पार देखा और फिर कुणाल के सामने गर्मबुखारी के पास पड़ी कुर्सी पर बैठ चाय के घूंट भरने लगा।

''बर्फ अच्छी लग रही है न'' हैरी ने प्रश्न किया।

''बहुत....'' कहते कुणाल जैसे खो गया।

कुणाल का जन्म जहां हुआ था वहां हिमपात तो क्या सर्दी भी कम होती थी। उसके दादा जी बचपन में उसे शिमला, मसूरी हिमपात दिखाने के लिए बुला लिया करते थे। फिर पापा, मां, बुआ और चाचा-चाची तथा चचेरे भाइयों के साथ खूब महफिल जमती थी। शीशे वाली बंद खिड़की के पास गर्म कपड़े पहना घर के बच्चों को बर्फ पड़ती देखने के लिए बिठा दिया जाता था। क्या मजाल कि़ कोई घर का बच्चा बिना पूछे बंगले से बाहर चला जाये। उसके डी. एफ. ओ. दादा जी का कड़ा आदेश था। जिसका पालन घर वाले तो क्या नौकर तक भी करते थे।

''तुम्हारा मम्मी-पापा इन्डिया चला गया?''

'नो..... नो.... अभी तो वो आये हैं।' कुणाल ने विचार लोक से निकल उत्तर दिया, ''मम्मी-पापा क़ो आये हुए महीना हो चला है। पूरे दो महीने और मेरे पास रहेंगे। मजा आ जायेगा। धूमेंगे, फिरेंगे ख़ूब मजे करेंगे।''

---

* *323-रिहाड़ी कालोनी, जम्मू तवी-180005*

हैरी की देखा-देखी कुणाल ने हैम्बर्गर उठा लिया। उसे खाते बोला-''मेरे पापा बहुत खुशमिजाज़ हैं और मां प्यारी-प्यारी। मेरी मां खाना बहुत बढ़िया बनाती है हैरी। एक बार चख लोगे न तो नॉनवेज़ पीज़ा-बर्गर भूल उंगुलियां चाटते रह ,जाओगे। फिंर ऐसा स्वादिष्ट खाना तुम्हें योरूप-भर के बाजार में ढूँढ़े न मिलेगा।''

हैरी निर्विकार बैठा था। उसके समाज में यह सब कब का दिवास्वप्न हो चुका था। लड़का-लड़की को युवा होने ही कौन देता था। उनके जीवन की गंगा तो सुदूर यौवन से परे स्कूली दिनों में गदली होनी प्रारम्भ हो जाती थी। तनिक होश आया तो केयर टेंकर स्कूलों में भेज दिया। उससे बड़े हुए तो होस्टल भेज दिया। जैसे-कैसे स्कूली शिक्षा समाप्त हुई खाने कमाने के लिए घर से बाहर मित्रों के साथ रहने लगे। फिर माता-पिता भी स्वतन्त्र और बच्चे भी दायित्व मुक्त। हैलो-हाय, दुआ-सलाम हुई तो ठीक, अन्यथा कोई परवाह नहीं। उन्मुक्त स्वच्छन्द जीवन, ब्वॉय-गर्ल फ्रेन्ड की धूरी पर घूमती जिन्दगी। यह नहीं तो और, वो नहीं तो कोई और... और.... और... कोई और....। मां कोई बाप कोई। मैरिज की दी पतली दीवार जब जी चाह ठोकर मार तोड़ दी।

कोई बन्धन नहीं। न माता-पिता और न सन्तान का। मौज-मस्ती, कामुकता, शराब, होटल, कैसीनो पॅब, बार! फिर कैसा घर कैसी फैमिली। चूल्हा जला न जला। बाजार में रैडीमैड सब कुछ उपलब्ध व्यर्थ के पचड़ों में कौन पड़े।

कुणाल को यह सब रास नहीं आया था। औपचारिकता फार्मेलिटी पर टँगी तथाकथित ज़िन्दगी रिश्तों की सुवास गन्ध तक नहीं। आधुनिकता के नाम पर पुरातन मूल्यों को नकारने वाले यह तथाकथित प्रगतिशील लोग क्या जाने ताया-ताई, चाचा-चाची, दादा-दादी का प्यार, बुआ-मौसी और नानी-नाना का दुलार। चचेरे भाई-बहिनों के सम्बन्ध। भाई-बहिन के पश्चात् इनके रिश्ते आगे नहीं....। वो बचपन के दिन कच्ची अम्बियां, बेर चुरने के दिन, बुड़िया की झिड़की, माली से डांट खाने के दिन। वो मां की लाल आँखें और दादी की झोली में मुँह छिपा रो पड़ने के दिन। वो गुड्डे-गुड़ियों की शादियां, घर-घर का खेल, कब्बड्डी, खो-खो, कंचे खेलने के दिन, वो मान मनोबल शरारतों भरे दिन....

कुणाल क्रिकेट तो फिर भी देख लेता था। पर फुटबाल, रेसलिंग में खून-खराबा होता देख उसे घिन्न आने लगती थी। खेल न हुआ युद्ध हो गया। रेफरी तक को पीट दिया। हार हज़म न हुई तो तोड़-फोड़ कर डाली।

''किन सोचों में डूब गये कुणाल हैम्बर्गर भी खाया नहीं गया और चाय भी ठन्डी हो गई।''

''सॉरी हैरी माँ की बात बताते मैं जैसे खो गया। चाय की होश तक न रही।'' कुणाल ने हैम्बर्गर खाने का प्रयास किया।

''यह चाय रहने दीजिये। मैं आपके लिए चाय का और कप बनाता हूँ।''

चाय की चुस्कियों के मध्य हैरी ने बातचीत पुनः प्रारम्भ करके कहा-''सॅर इन्डिया के विषय में मेरी स्टडी बुक्स तक ही है। जब कभी कोई भारत की यात्रा करके आया फ्रेंड मुझे वहां की जानकारी देता है तो सुनकर आश्चर्य होता है। बिना जाने-पहचाने अरेंजड मैरिज कर लड़का-लड़की सारी आयु एक छत के नीचे गुज़ार देते हैं। डाडा-डाडी भी साथ रहते हैं। ब्रदर-ब्रदर ए बिग फेमिली अन्डर वन रूफ! दम नहीं घुटता।''

''भारत के कल्चर में तलाक शब्द नहीं है हैरी। न धर्म ग्रन्थों में, न आम जन-जीवन में। जैसा भी पति मिल गया स्वीकर कर लिया। सारी आयु उसी के साथ काट दी। जब से पश्चिमी हवा वहाँ भी बह निकली है तलाक होने लगे हैं। फिर भी लोग घर तोड़ने की बजाय सुलह-सफ़ाई को मान देते हैं। तलाकशुदा को समाज में अच्छी दृष्टि से नहीं देखा जाता।''

''यह लोग आज भी नहीं बदले। हाऊ अनकल्चर्ड दे आर! रूढ़ियों के गुलाम आज भी लकीरें पीटे जा रहे हैं।''

''हैरी सुनी-सुनाई बातों को लेकर मत चलो। भारत में आने का जब भी अवसर मिले मेरे घर अवश्य आना। मैं वहाँ तुम्हें दिखाऊँगा फैमिली क्या होती है? हसबैंड-वाइफ के रिश्ते क्या होते हैं? बच्चे, बूढ़े सब एक ही फैमिली में कैसे रहते हैं? कैसी होती है, रिश्तों की मान-मर्यादा और मिठास, गमी-खुशी का अनुभव।''

हैरी ने छत की और देखते हुए कहा-''सॅर आप ठीक कहते होंगे। मेरे पापा इंग्लैंड के और मां जर्मन की हैं। दोनों का तलाक हो गया अब यह मैरिज करके यहां इंग्लैंड में रह रहे हैं। पिछली शादी से इनके बच्चे अर्थात् मेरे भाई-बहिन कितने हैं इन्होंने बताया तक नहीं। मैंने जब से आँख खोली है स्वयं को अकेला ही पाया है।''

''ओह!'' कुणाल के मुँह से निकला।

''सॅर इन्डिया के बारे में और कुछ बतायें न। मुझे आपके मुँह से सुनना अच्छा लग रहा है।''

''भारत के त्यौहार तो तुमने मनाये जाते देखें होंगे। पर बो काटा...।

बो काटा.... यह श्रीकृष्ण के जन्म दिन और रक्षा बंधन, वसंत पंचमी को छत पर से पतंग उड़ाने वालों का प्रिय शब्द है। नीले आकाश में दूर तक उड़ती पतंगों (काईटस) में से जब कोई पतंग कट जाती है तो उड़ाने वाले खुशी से झूम कर चिल्ला उठते हैं.... बो काटा... अर्थात् पतंग काट दी।''

''सर इन्डियन टैलेन्टिड भी हैं वर्कर भी हैं फिर यह लोग स्लेव कैसे हो गये?''

परतन्त्रता, गुलामी कुणाल की दुखती रग थी।

उसे लगा जैसे हैरी ने जिसे अन्जाने में ही निर्दयता से दबा दिया हो। कैसे बताये हैरी को कि मुट्ठी-भर स्वार्थी, मौकापरस्तों ने विश्व गुरू देश को कहां-से-कहां पहुंचा दिया। शहीद

फांसी झूल, गोलियां खा अज्ञातवास में रह, देश को स्वतंत्र करा गये। स्वार्थियों ने देश को जी-भर लूटा। उसे गूंगा अपाहिज बनाकर रख दिया।

हैरी की दृष्ठि कुणाल पर गड़ी थी। और कुणाल था कि उससे कुछ कहते बन नहीं पड़ रहा था। इससे पूर्व कि वह कुछ कहने को मुँह खोल पाता कालबैल जोर से बज उठी।

कुणाल ने व्यस्त हो पहलू बदला हैरी ने हड़बड़ाकर उठते हुए कहा-"सर प्लीज आप उठिये नहीं। मैं बाहर जाकर स्वयं देखता हूँ कौन आया है?"

कुणाल स्वस्थ हो कुर्सी पर बैठा आग तापता रहा। एक बड़ी अप्रिय स्थिति से कालबैल ने बजकर उसे उभार लिया था।

मौसम खराब था। पर्दा हटाकर वो खिड़की के शीशे के उस पार चांदी की श्वेत चादर को देखता रहा। मां-पापा उसकी राह देख रहे होंगे। उसे ख़्याल आया।

चिरकाल पश्चात् कुणाल की तन्द्रा टूटी थी। हैरी की कुर्सी खाली पड़ी थी। वो तो आगुन्तकों को द्वार तक देखने के लिए गया था। कहीं वहीं से विदा करने तो निकल नहीं गया। मारे घबराहट के उससे बैठा न गया। वो उठकर गलियारे में चला आया।

"हम मदर डै को रेस्टोरेंट में नहीं मिले थे?"

"सॅन मिले थे।"

बाहिर गलियारे के अन्त में हैरी की किसी के साथ मन्द स्वर में बातचीत चल रही थी।

"फिर फेमिली डे पर मैंने आपको लोटस में इन्वाईट नहीं किया था?"

"किया था सॅन मदर और मुझे गिफ्ट भी दिये थे।"

"फिर आज आप बिना किसी एप्वाईटमैंट के बिन बुलाये कैसे यहाँ आ गये?"

"सॅन, हम गिरजाघर से घर जाने को निकल रहे थे तुम्हारी मॉम ने कहा-"बर्फ और कोहरे में इतनी दूर घर के लिए ड्राईव कहाँ करते फिरोगे। हैरी का घर यहाँ समीप कुछ फर्लांग पर है। आज नाईट वहीं स्टे कर लेंगे।"

"ओह नो....."

"माई सॅन............" स्त्री का कंठस्वर गूँजा।

"नो मॉम आज आपको जाना पड़ेगा। आज की रात मैंने एक इम्पारटैंट (महत्त्वपूर्ण) एप्वाईटमैंट ले रखा है। मुझे गैस्ट अटैंड करना है।"

क्रोध में भर कर हैरी चीख रहा था। एक बार कुणाल के मन में आया कहे–''मम्मी-पापा को भीतर आने दो हैरी। वैसे भी मैंने रात भर यहाँ रुकना कहाँ है। फिर एप्वाईंटमैंट का क्या है फिर कभी फोन पर मिलना तय कर लेंगे।''

''सॅन इस आंधी-तूफान, बर्फबारी में हम कहाँ भटकते फिरेंगे।'' पुरुष गिड़गिड़ाया।

''चले जाईये कहीं भी पर मुझे डिस्टर्ब न करें।''

हैरी दहाड़ा था।

आकाश पर बादलों की गड़गड़ाहट के साथ विद्युत रेखा दूर बहुत दूर कौंधी थी। किंकर्तव्य विमूढ़ खड़े कुणाल ने देखा एक वृद्ध अंग्रेज़ अपनी पत्नी के साथ द्वार के बीचो बीच खड़े हैरी को अपलक आशा भरी दृष्टि से देखे जा रहा था।

इतना बड़ा सुस्जित घर! जन्म देने वाले माता-पिता को ठहराने के लिए तिल-भर स्थान नहीं। क्या हो गया है हैरी को! भारत में कोई देखे तो क्या कहे ? क्या इसी दुर्दिन के लिए माता-पिता सन्तान के लिए कष्ट उठाते हैं ?

''सन... प्लीज हमें भीतर आने दो.....'' पति-पत्नी कम्पित स्वर में गुहार लगा रहे थे।

''नो.... नो.....'' हैरी चट्टान की भांति खमठोका द्वार के मध्य खड़ा था।

रक्त को जमा देने वाले जाड़े में माता-पिता की मनुहार के साथ हैरी की तकरार बढ़ती चली जा रही थी। कुणाल की आखों में अपने देश के पहाड़ी लोग तैर रहे थे जो स्लेट के छोटे घरों में माता-पिता भरे-पूरे परिवार तो क्या भूले-भटके बटोहियों और यात्रियों तक का ऐसे खराब मौसम में गर्मजोशी से स्वागत करते थे। फिर यह तो गैर नहीं माता-पिता हैं।

मारे घृणा आक्रोश के कुणाल का पारा प्रतिपल चढ़ता जा रहा था उसका मन किया हैरी की पीठ पर बूट की ठोकर जमा उसके माता-पिता को सादर भीतर ले आये। और फिर झन्नाटेदार थप्पड़ हैरी के मुँह रसीद कर कहे- ''यही है तुम्हारी सम्यता-संस्कृति जिसका तुम्हें अपार गर्व है। भोग-विलास के गटर में आकंठ डूबे तुम क्या जानो रिश्तों की उष्णता, माधुर्य एवं मिठास ?

भड़ाक हैरी ने द्वार बंद किया और अपनी कुर्सी पर पुनः आ बैठा। कुणाल भी स्तब्ध बैठा था। बाहिर मूसलाधार वर्षा में वृद्ध दम्पति की क्षीण सिसकियां गूंज रही थी....

ooo

कंधे पर तितली

❒ बलदेव वंशी*

तितली
अक्सर देखी जाती है
फूलों के साथ
पराग बटोरती कण-कण
बेचारी....
और मनुष्य उसे अपने जाल में
घेरता फंसाता व्यस्त...
परन्तु जिस दिन
दिखेगी
मनुष्य के साथ
उस के कंधे पर निर्भय
निशंक
वह होगी
वास्तव में
मानव संवेदना की
गुनगुनी दोपहरी!...

जाग जाना : पा जाना है !

अपने ही भीतर
जब तुम बन जाते हो
सहजताओं के प्रति कुटिल-कृत्रिम
सरलताओं के प्रति वज्र-कठोर
ठीक उसी समय
आह्लाद और आनंद की गंगाएं
ठिठक कर अधर में
रूक जाती हैं तुम्हारे पास आतीं....
सत्य के
इस मर्म को
अभी तुम नहीं जानते
जान जाओगे जिस दिन
पा जाओगे
जहां भी खड़े हो
जिस भी सीढ़ी पर
नींद में
उसी समय जाग जाओगे!
आखिर
जाग जाना
पा जाना है। ०००

* ए-3/283, पश्चिम विहार, नई दिल्ली-110063

बात सुनो गंगा मां !

❑ डॉ. दिनेश चमोला 'शैलेश'*

पुण्यतोया गंगा मां!
हृदय से स्वीकारते हैं हम
कि तुम हमारे मैत के
उत्तुंग शिखरों, हिमालयों से प्रवाहित होती हो
डांडियों-घाटियों को शब्दायित करती हुई
अपने-परायों के पापों को धोती हुई
उफनती चली जाती हो
गंगा सागर तक
समतलवासियों की समृद्धि का पर्याय बनकर

तुम्हें मंदाकिनी कहूं
कहूं भागीरथी, अलकनंदा, पिंडर या कुछ और
तुम हर जगह
पहाड़ों के चरण धोते बहती हो
नागिन-सी बल खाती
खामोश नीचे-नीचे तलहटों पर

तुम
बर्फ से भी शीतल
अथाह जलराशि को समेट
कालांतर से करती रही हो
अनथक यात्रा
लेकिन क्या दिया तुमने
अपने मैतियों को?
न पानी, न ऊर्जा
और न ही कुछ और
बल्कि ले जाती रही हो
बहा-बहाकर
यहां की उर्वर मिट्टी की शक्ति को भी
दूर समतलों में
ऐसे में भला हम ऊंचा कैसे कर सकते हैं
गौरवान्वित हो अपना भाल?

तेरी अथाह जलराशि के चलते भी
बूंद-बूंद पानी के लिए
तिसमली से तड़पते हैं
हम पहाड़ के माथे पर बसे
प्यासे पहाड़ के कई गांव
तेरे होने पर भी बाध्य हैं करने को
हम पहाड़ के लोग
ऊखड़ (ऊसर) धरती
विश्व में कौन है ऐसा देश
जो करता हो बिना पानी के ऊखड़ खेती?

हमारे लिए
भावनात्मक श्रद्धा के अतिरिक्त
किस भौतिक लाभ या
समृद्धि का पर्याय है
तुम्हारा यह दिव्य स्वरूप?
तेरे शीतल पानी से यदि सिंचाई का
दुस्साहस किया भी है किसी ने
तो फसल ही क्या
हल्द्या बैलों से भी हाथ धोकर रह गया वह

मां!
नाराज़ मत होना
अपना यह रोष
व्यक्त है महज आत्मीयतावश ही
हमारे संकटों व मृत्यु का ही
पर्याय है तेरी यह जलराशि,
जब जीवन से अत्यंत दुखी व खिन्न
हो उठती हैं पहाड़ की धियाणियां

---

* *सम्पादक ''विकल्प'' भारतीय पेट्रोलियम संस्थान, देहरादून-248005 (भारत)*

तो मार देती हैं गाड़ फाल (छलांग)
फिर से इस जीवन में
कभी न लौटने के लिए
या फिर
हो तुम हम सबकी
मृत्यु का अंत्येष्टि स्थल

पहाड़ों की सीमा फांदते ही
बन बैठती हो तुम
पूर्णतः व्यावसायिकता का प्रतीक
तेरे गंगा जल से ही
महज बोतलें भर
चल पड़ती हैं कितनों की जीवन-चर्या
रोप लेते हैं किसान भूमि को
उगाते हैं भरपूर अन्न
लहलहा उठती है खेती
बन जाता है तेरा पानी
सुख व समृद्धि का प्रतीक

मां!
क्या पहाड़ के जीवन में
पहाड़ से दुखों का आभास कर
तो नहीं सिमट दी तुमने
अपने सुखों की पोटली?
क्या इसीलिए लाए थे भागीरथ
तुम्हें हम पहाड़वासियों को
ललचाने के लिए
धरती पर?

०००

कल जो नहीं रहा

❑ डॉ० अशोक जेरथ

तुम मेरा कल लौटा दो
मैं लौट जाऊंगा
मुझे मेरा आज दे दो
मैं थिर हो जाऊंगा
पर
तुम्हारे पास न मेरा कल है
न ही सुरक्षित है आज
तुमने सदा काटा है पानी को
आज और कल में
फिर
देखा तक नहीं दूसरे क्षण
कि पानी तो कटा ही नहीं।

हवा को ही बान्धते
तो कुछ बात होती
धूप और छांव के अन्तर को पाले
मैं आज
अपने कल को बीन रहा हूं

०००

डोलती नैया, नदी किनारा मांगती है

छोड़ो न श्वास
अभी है आस
डोलती नैया
नदी किनारा मांगती है
फैली है धरा
तंग हुआ आकाश
उन्मुक्त लहरें किसे बान्धती हैं।

ज्हाज पानी में डगमगाते हैं
झरने उमंगों के झरझर जाते हैं
दीप उच्छृखंल हैं
पर आवारा नहीं
घिरे हैं पानी से
थामने को किनारा नहीं
चलो ढूंढे, कहां कोई देखे
अपनी ही आस्थायें
विश्वास मांगती हैं
डोलती नैया, नदी किनारा मांगती है।

०००

अग्निगर्भा

□ हरिशंकर सक्सेना*

फिर अघोषित लग रहे प्रतिबंध
मन घायल हुआ

आँधियों से जूझकर
फिर बोधितरु आहत हुआ
और पक्षाघात की भी
लग गई उसको दुआ
अग्निगर्भा हो गया सम्बन्ध
मन घायल हुआ

खौफ़ ने सौ वर्जनाएँ
गोद डालीं हाथ पर
कामला से घिर गए
अधिसंख्य फिर नीलाभचर
ज़िन्दगी बस हो गई अनुबंध
मन घायल हुआ

छद्‌म निश्छलता लिए
अधिभार घर आते रहे
टाँककर पैबन्द हम
हर हाल मुस्काते रहे
आस्था ने तोड़ दी सौगन्ध
मन घायल हुआ

०००

उधार की धूप

गाँव-किसानों-चौपालों को
मिलती धूप उधारी में
'धनिया' का 'गोदान' असम्भव
टूट गई पिसनारी में

कहने को बिजली गाँवों में
नल भी कुछ सरकारी हैं
सूदखोर से कैसे निबटें
कर्जे भारी-भारी हैं
मुखिया मालामाल हो गया
मौज मिली बटमारी में
पैबन्दी कपड़ों में 'होरी'
अब भी आँसू पीता है
मज़दूरी का टोटा हो तो
घास बेचकर जीता है
सूखी रोटी श्रम का फल है
चटनी ही तरकारी में
बच्चे नंगे पाँव खेत में
सिला बीनने जाते हैं
'धनिया' के सँग भूखे-प्यासे
कंडे भी पथवाते हैं
ढोर चराना लिखा भाग्य में
दाना नहीं कुठारी में

०००

---

* 145, कर्मचारी नगर, बरेली (उ. प्र.) 243122

अहसास

❒ संजीव भसीन

तन्हाइयों के खालीपन में
जब मैं और मेरे अहसास
होते हैं बहुत पास-पास
भीतर के उफनते सागर में
बहुत गहरे उतरकर
सोचा करता हूं अक्सर
नरमुण्डों के जंगल में
मेरे चेहरे का भी होना
विकास-क्रम का सोपान नहीं
औपचारिकता मात्र है
जीवन चक्र की!
चाहे-अनचाहे में
लाया गया मैं
समय की लहरों में
बहाया गया मैं
अनिश्चय के भंवर में
अनवरत घूमते
काल की शिलाओं से
टकराकर
होता जा रहा हूँ खण्ड-खण्ड।
सूर्योदय से
दोपहर तक के सफर में
पल-पल परिवर्तन झेलते
वक्त की गोद में खेलते
मेरी हर साँस
और हर अहसास के साथ
हुआ है बलात्कार
बार-बार।

चाहतों के उन्मुक्त गगन में
उमंगों की परवाज़ भरते-भरते
थक गए हैं मेरे डैने
कुंद पड़ गए हैं मेरे दृष्टिकोण
और मेरा अस्तित्व
बौना होता जा रहा है।
साँस दर साँस
मजबूरियां जीते
घूंट-घूंट विष पीते
इंच-दर-इंच
सुलगते हुए
मैंने ढोई
घायल अहसासों की सलीबें!
हर उस मोड़ पर
जो अनवरत भटकन को
अन्धी गुफ़ाओं तक
ले जाता है-
मैं रुक कर सोचता हूं
कि अच्छा होता
सुप्तावस्था में पड़ा बीज
न अंकुरित हुआ होता
न तना बढ़ता
न कोंपलें फूटतीं
न शाखायें फैलतीं
और न आँधियों के
थपेड़ों से लड़ते
तना झुका-झुका जाता।

ooo

मेरी भाषा

❐ राजेन्द्र उपाध्याय*

मेरी भाषा मेरे लिए गंगा है
जो हर रोज मुझे करती है पवित्र
मेरी भाषा मेरे लिए नर्मदा है
जो हर रोज मेरी पृथ्वी में भरती है
अथाह सौन्दर्य...

मेरे लिए यह गंगा, नर्मदा, सरस्वती, कावेरी
घाघरा, गंडक, कोसी का संगम है
जिसके घाटों पर रोज-ब-रोज कुंभ होता है।

मैं पीता हूं भाषा का अमृत
शब्दों की गंगोत्री से
और जीता हूं।

मेरी भाषा में शिवसहस्रनाम है
पेड़ों, बादलों और नदियों के भी असंख्य नाम है
कई नामों वाली होने के बावजूद
मेरी भाषा एक है

मेरी भाषा से रचे गए कई प्रकाश ग्रंथ
कई उजली किताबें
जिनके जुगनूं जैसे शब्द
अंधेरे में चलते हैं मेरे साथ

जहां जी चाहे चले जाओ तुम सब
संगमरमरी अट्टालिकाओं में अपना घर बनाओ
मैं तो रहूंगा अपनी इसी मां के झोंपड़े में,
जहां रहते है मेरे साथ निराला, पंत, प्रसाद, महादेवी
सुभद्रा, मैथिलीशरण, रेणु, प्रेमचंद
इन्होंने सीचीं है नींव इसकी अपने खून-पसीने से

आज भी गली-कूचों में जीवित है यह भाषा
रोज-ब-रोज सुनाता हूं कि मर रही है यह
पर रोज-ब-रोज जिसे सुनता हूं अपनी तुतलाती बेटी से
जिसे सुनता हूं भीड़ भरे डिब्बे में किसी मद्रासी के मुख से
जिसे सुनता हूं परदेस में वह क्या है?

मरता आदमी जिस भाषा में पानी मांगता है
वह भाषा कभी मर नहीं सकती!

०००

* *62-बी ला अपार्टमेंट ए. जी. सी. आर एन्क्लेव दिल्ली-110092*

सुबह की सभा में

❐ अजामिल*

कहिए जनाब,
क्या हालचाल है, लीजिए चाय पीजिए...
क्या यह सच है भाईजान
कि जो कुछ सहा जा रहा है
आत्मा की सतह पर
बर्फ की मानिंद
उसके नीचे एक आग है?

क्या यह सच है कि
पेड़ अपनी चुप्पी के खिलाफ
हरहरा रहे है पूरी ताकत से?
क्या यह सच है कि
हवाएं रास्ते बदल रही हैं/धर्मग्रंथों के बीच
खुफियागिरी करते हुए,
लोग फिंगर प्रिंट बचाने के लिए
दस्तानों में छुपा रहे है अपने हाथ,
वक़्त महापुरुषों के बयानों से काटा जा रहा है-
मासूम मेमने की तरह

क्या यह सच है कि
आकाश के अनंत विस्तार को
छोड़ते हुए -सहमी हुई हैं चिड़ियां,
चील और गिद्ध रद्द कर रहे हैं अपनी उड़ानें
टोपियों की चिंता में सभी मुब्तिला हैं बहस में
शान्ति कपीन खून में लथपथ पड़ा है-दुनिया के नक्शे पर
अन्दर ही अन्दर/राजनीति की आरी से काटा जा
रहा है आदमी/बोलिए साहब, क्या यह सच है?
अगर यह सच है
तो फौरन से पेशतर बर्दाश्त की हद से
बाहर निकलिए जनाब,
बातों के परचम न लहराइए हवा में
खिड़कियां खोल दीजिए-सबसे पहले,
अपनी डायरी में देखिए-क्या कहीं कुछ दबा है
अतीत के काले सफों में/ रंगहीन तितली-सा
इतिहास के साये में

---

* *735/502/116 ए/3 मीरापुर, इलाहाबाद-211003*

बेटों से कहिए वे जूते कसें,
अफलातूनों की तरह चुम्मा-चुम्मा ना सुनते रहें
बीवियों के पहलुओं में छुपकर
आगे की लड़ाई सच बचाने के लिए नहीं बुजुर्गवार,
भीतर की दहशत के खिलाफ लड़ी जाएगी-सबसे पहले
खबरों में फंसा आदमी इन दिनों
बहुत बैचैन है जनाब,
सावधान रहिए, उसके दियासलाई
दिखाने-भर की देर है...

०००

मैं एक साथ

❐ श्याम बिहारी

मैं
कितने कितने लोगों से
करना चाहता हूं बात
एक साथ

कुछ रिश्ते जो टूट चुके
कुछ टूटने के कगार पर
कुछ दोस्त जो चाहते
उनके खेमे की भाषा बनूं
कुछ ऐसे
जो मुझी में तलाशते अपना बयान

हर आंख एक कुआं
पता नहीं
दर्द के किस समंदर में खुलता है
मैं डूबना चाहता हूँ हर आँख में
पी जाना चाहता हूँ
समंदरों के समंदर दर्द
गिने-चुने घूंटों में

मैं कितने-कितने लोगों से
करना चाहता हूं बात
एक साथ

०००

मदारी का खेल

डॉ० प्रद्युम्न भल्ला*

लीजिए साहब
मदारी ने बजा दी है डुगडुगी
बजा सकता है वैसे वह
अपना खाली पेट भी
जो बजता है हर रोज
डुगडुगी की तरह
जुटने लगी है भीड़
देखने मदारी का खेल
क्या बच्चे क्या बड़े
क्या बूढ़े क्या जवान
क्या आदमी क्या औरतें
सभी देखना चाहते हैं खेल
कुछ पल के लिए ही सही
भूलना चाहते हैं खुद को
देख कर, सुन कर, मज़ा लेकर
मदारी और जमूरे को
अभी कुछ पल में ही
वह छोटी, काली, पतली-सी लड़की
जिसके बाल उलझे हैं, रूखे हैं
जिसके कपड़े फटे हैं, मैले हैं
जिसके होठों पर पपड़ी सी-जमी है
जिसके पेट में भूख न जाने कैसे थमी है
अभी यह लड़की
रस्सी पर चलेगी
नहीं-नहीं घबराइए नहीं
यह गिरेगी नहीं
गिर भी गई तो क्या है
इसकी मां भी यूं ही गिरी थी
गिर-गिर कर ही चलना सीखा है इसने
मगर आपके लिए यह एक खेल है
फिर यही लड़की
एक छोटे से घेरे में से
अपने शरीर को जोड़-तोड़ कर
तरोड़-मरोड़ कर, छोटा-बड़ा कर के
निकल जाएगी
आप तालियां तो बजाएंगे
मगर जल्द ही
आपको अपने काम याद आ जाएंगे
और
एक-दूसरे को चोर नज़रों से देखते
आप खिसक जाएंगे
क्योंकि
अब मदारी पैसे मांगेगा
यानि आपकी संवेदना चाहेगा
मगर कहां
वे तो कब की
मर चुकी है
जिस्म ही है
आत्माएं तो कब की,
न जाने कब की
रसातल को
प्रस्थान कर चुकी हैं।

०००

* *508/20 अरबन अस्टेट कैंथल - 136 027*

कबाड़ी बच्चे

❒ डॉ. कमल के 'प्यासा'

काले कलूटे
फटे हाल,
लिए मैले-मैले
नन्हें हाथ ......!
हाथों में थामें
रोज़ी-रोटी का जुगाड़
एक अदद बोरी और
मुड़ी लोहे की तार ......!
पौ फटते ही
गली हाट-बाजार
कहीं, बस्ती से बाहर
कूड़े-कचरे के पास
नदी-नाले के आर-पार
ढूंढ़ते, तलाशते .....
बीनते ढेर .....
नन्हें-नन्हें हाथ !!
खोजी पैनी नज़रें
जहां पड़तीं,
पा लेतीं उपचार
हो जातीं फिर ख़ुद ही
शान्त,
लगी पेट की आग ......!
आंखें मूंदे,
सभी देखते ......
भूखे-नंगे
भिखारी समझते,
कि भटकते रहते हैं
कबाड़ में उलझे
कबाड़ से खेलते
अक्सर कबाड़ी बच्चे !
कूड़े में हाथ डालते
गन्दे लगते हैं ......
नाक सिकुड़ जाते हैं ......
मुंह-नेत्र फिर जाते हैं ......
पर्यावरण प्रेमियों और
प्रदूषण विरोधियों के,
तो कहीं पढ़े-लिखे
सफ़ेदपोश समाज के
ठेकेदारों के ......!!
कौन जानता है,
इन्हें......
इन नन्हें-नन्हें
मैले हाथों को ......?!
क्या ये व्यर्थ परजीवी
पर्यावरण रक्षक एवं
प्रदूषण रोधी नहीं ??
जैविक-अजैविक प्रदूषकों से
खोजते-तलाशते
छिपी नष्ट होती निधि ......
पालीथीन, टीन-कनस्तर
लोहा, मैटल, प्लास्टिक
यहां-वहां बिखरे
अमूल्य कण-कण को !!
जिनके निरूपण व
पुनर्चक्रण में भी;
अग्रगामी रहते यही
नन्हें-नन्हें मैले हाथ
हाथों में थमी तार ......
तार को छांटते निकालते
बोरी में भरते ......
देश की आर्थिक स्थिति
मज़बूत करते,
रोज़गार, रोज़ी-रोटी
उद्योग-धन्धे चलाते
संपति बचाते
बदहाली मिटाते
उर्वरता लाते
मिट्टी, जंगल, पानी, वर्षा
सभी पर नियन्त्रण बनाते
फटेहाल, मैले-मैले
काले क़लूटे
नन्हें हाथों वाले
भूखे-नंगे दर-दर भटकते
जाने-पहचाने कबाड़ से खेलते
कबाड़ी बच्चे!!!

०००

पृथ्वी 34/7 अप्पर समखेतर, मण्डी-175001 (हि. प्र.)

तमन्नाएं सूखने लगती हैं

❒ निर्मल विक्रम

नटखट हवा
जब संग लिए आती है देवदार
हक से आंचल उड़ाती है ....
स्मृति में झरने लगते हैं फूल
और सतरंगी आसमानी पींग
परियों के देश में उतार आती है
सातवें आसमान से परे
दूर वहां
चाहत की बस्ती में,
खुशियां झरनों-सी बहती हैं
अमृत-ओस की मख़मली बूंदें
हरपल
टप-टप टपकती हैं
वहां
सूरज के ओज में
प्रेम-ताप फैलाता जाता है
इस मधुर सुहाने काल में
डर कोसों भागता जाता है
आतंक को मथकर, जी भर
बच्चे खेलते मिलते हैं
ग़म से अनभिज्ञ बूढ़े वहां
शाम की सैर पे निकलते हैं
सपनों में उगते हैं
कमल, केसर, नन्दरू और सेब
हज़ारों-हज़ार पक्षी यहां
खुली छतों पे दाना चुगते हैं।

यह हमारी सदी के
उन महीनों की बात है
जब लोग भ्रम में नहीं जीते थे
और हरेक सांस संग खिलखिलाहट पीते थे
बहुत दिन हुए
यह उन दिनों की बात है ......
यादों की सांकल खड़कती है
और सहम अंदर दाखिल होता है
आजकल
भोर के गीत
मरसिया बनकर होठों पर चिपक जाते हैं
सरकारी टैंट
नटखट हवा की खिल्ली उड़ाते हैं
सपने तो आंखों में बिल्कुल नहीं आते हैं ......
यह हमारी सदी का वह काल है
और अस्तित्व हरेक
खंड-खंड बिखरता जाता है
किसी की पकड़ में कुछ भी नही आता है
यह हमारी सदी का वह काल है
जब चिनार के सूखे पत्ते
ख़ामोशी की तह बनकर
भीतर तक बिछ जाते हैं
तमन्नाएं सूखने लगती हैं
और आसमानी रंग
फुफकारते विषधरों में बदल जाते हैं।

०००

व्यंग

दोहरा शतक

❐ प्रो. रीता जितेन्द्र*

प्रत्येक व्यक्ति लगभग दोहरी ज़िन्दगी जीता है और वह भी एक से अधिक अर्थों में। परन्तु मेरा संकेत जिस ओर है वह है उसकी कामकाजी ज़िन्दगी। उस में दो पक्ष होते हैं- एक जीवन निर्वाह के लिये क्रियाशील होना और दूसरा मानसिक सन्तुष्टि के लिये कोई हॉबी पालना। इसकी एक वजह यह भी है कि कारोबार चाहे किसी भी चाव से अपनाया गया हो एक ऊब पैदा कर के ही रहता है। कोई कितनी कोशिश क्यों न करे कि स्वभाव और स्वधर्म गीता वचन को शिरोधार्य करते हुए कि एक हो जायें पर एक होते नहीं। होता यूं है कि लोग हॉबी को जॉब की तरह संजीदगी से लेने लगते हैं और जॉब तो, विशेष रूप से यदि सरकारी हो, तो हॉबी से अधिक मानते ही कब हैं, कुछ लोग ऐसे भी होते हैं जो जॉब और हॉबी को ऐसे दूध शक्कर कर देते हैं कि पता ही नहीं चलता कि कब दूध का स्वाद ख़त्म हुआ और शक्कर का शुरू। हुआ यूं कि जॉब करते समय हमें प्रायः किन्हीं आयोजनों की अध्यक्षता करनी पड़ती थी और ज्यों-ज्यों जॉब ऊंचा होता गया अध्यक्षता के offer भी बढ़ने लगे और एक समय तो ऐसा आया कि इससे पीछा छुड़ाना मुश्किल हो गया। एक हमारी पड़ोसन मामूल के अनुसार हमारे कीमती समय को अपना व्यस्त समय बनाने की नीयत से हमारे यहां चाय नोश फ़रमा रहीं थीं कि इतने में कुछ लोग मिसकीन-सी-शक्ल बना कर हमसे अध्यक्षता करने की प्रार्थना लेकर आ धमके, मेरे पास वैसे भी समय नहीं था और नोटिस इतना शार्ट कि मुझे उन की दावत कबूल करना कठिन नज़र आ रहा था। साफ़ जाहिर था कि कोई हमसे अधिक महत्त्वपूर्व व्यक्ति ने उन्हें ऐन वक़्त पर दगा दे दिया था-क्योंकि न करने की यह वजह नहीं थी। सबसिच्यूट अध्यक्षता हमने खालिस अध्यक्षता से कहीं अधिक बार की थी। एक लम्बे समय तक उपप्रधानाचार्य रहने की वजह से, प्रधानाचार्य की अनुपलब्धि के कारण अध्यक्षता का इतना कार्यभार संभाला था कि उस समय के कई प्रिंसिपलों से बेहतर अध्यक्षता कर लेते थे। हमारी पड़ोसन अक्सर सुबह का अख़बार लिये आ धमकती और कहती "क्या बात है आपने कल भी अध्यक्षता कर ही डाली। हमें पता है आप का अख़बार वाला देर से अख़बार देता है हमने सोचा हम ही यह ख़ुशख़बरी आप को दें। हाय ! कितनी खुशनसीब हैं आप!" अब हम उन को कैसे समझाते कि इस खुशख़बरी को हम ख़ुद झेल के आये हैं इसलिये हमारे लिये यह खुशख़बरी तो क्या "ख़बरी" भी नहीं थी। बहरहाल! इस लेटेस्ट मिसकीन पार्टी से क्षमा याचना की तैयारी .... करते हुए जो हमारी दृष्टि पड़ोसन पर गई तो उनकी आंखों में एक याचना नज़र आई। उसी क्षण मुझे दो पार्टियों में एक ही तीर के वार से खुशी देने

---

* *म० 256 शास्त्री नगर, जम्मू*

की संभावना नज़र आई। मैंने फ़ौरन उन महाशयों से पूछा "यह बहन जी चलेंगी ?" उन्होंने कई जोड़े उदास पलकें पड़ोसन की ओर उठाई जो अपने अस्तित्व के रोंये-रोंये से हाँ करने को तैयार थीं। हमने बात बनाने की गर्ज़ में कहा-"बड़ी योग्य महिला हैं। एक बार बना कर देखिये, बार बार बनायेंगे बल्कि केवल इन्हीं को बनायेंगे। यह कभी आप को शिकायत का मौका नहीं देंगी"-अपने सेल्ज़मेनिया अन्दाज़ से हमें लगा कि हम साबुन बेचने की कोशिश कर रहे हैं। वह पार्टी कुछ सकपका-सी गई। एक बात ज़रूर है उन महिला के सजे-संवरे अंदाज़ से वह आकर्षित मेरा मतलब है प्रभावित तो कुछ हो ही चुके थे। जो सुबह-सुबह इतनी सजी-संवरी हैं तो उन की शोभा शाम को क्या होगी। यानि जब "सुबह है इतनी मतवाली तो शाम का आलम क्या होगा", वाला भाव, कुछ उनकी आंखों मे आ चुका था। इससे पहले कि मैं पड़ोसन का बायोडाटा लेकर कुछ कहती वह स्वयं बोली। जी मेरी सबसे बड़ी qualification यह है कि मैं प्रिंसिपल साहिबा की पड़ोसन, सहचरी और बहुत कुछ हूँ। पड़ोसन होंठ दबा कर हंस रही थी और हमारी हंसी आने से पहले ही गायब हो चुकी थी। अरे भई यह बहुत कुछ कहां है। कहीं इनका इशारा उस चायपत्ती की ओर तो नहीं जो हमारा नौकर अपनी लापरवाही छिपाने के लिये और हमारी डांट से बचने के लिये, हमें बिना बताये एक बार इनसे मांग लाया था। हां ज़रूर उसी ओर था क्योंकि अब वह हातिम ताई के अन्दाज़ में खुलकर मुस्कुरा रही थीं। इससे पहले कि पड़ोसन की मुस्कुराहट मेरे कुछ ओर भेद खोलने की धमकी देती हमने दोनों पार्टियों के संबंध को गांठ लगाते हुए कहा "तो बात, पक्की" और सब लोग खुशी से मेरे घर से रवाना हुए। तीसरी सुबह पड़ोसन फिर अख़बार दिखाते हुए बोली "देखिये ! तस्वीर में पोज भी आप सा ही दिया है" अब मालूम हुआ कि अख़बार में हम कोई ख़ास पोज़ क्यों दिया करते थे-ख़ैर! आगे सुनिये, दूसरे हफ़्ते पड़ोसन बड़ी विनम्र मुद्रा में आई और प्रार्थना और धन्यवाद के मिक्सचर अन्दाज में बोली, "बहन जी! आप की कृपा से मेरा नाम अध्यक्षों की लिस्ट में आ चुका है। पहली अध्यक्षा तो मैं आप के सुने हुए भाषण को मिला कर भाषण करके निभा आई। अब आईन्दा तो आप ही को यह भार संभालना होगा। यानि अध्यक्षता के भाषण तैयार करने होंगे, "करने होंगे", कि करना होगा ?" "करने" अजी "करने" चार पार्टियों को तो अभी हां करके आई हूँ। फिलहाल इस बार तो तैयार कर दीजिए आगे से पहले ही बता दे दिया करूंगी।" हम मन-ही-मन यह सोच रहे थे। काश! इनका नाम अध्यक्षों की लिस्ट की जगह हिट लिस्ट में आया होता। पड़ोसन हमें हिलाते हुए बोली- "क्या सोच रहीं हैं ?" अब सोचने को बचा क्या था। पड़ोसन का वह तर्क जारी था। तुम्हीं ने दर्द दिया है बहन जी तुम्हीं दवा देना।' "पर बहन जी मैंने अपनी तरफ से आप के निठल्लेपन के दर्द की दवा दी थी, मुझे क्या पता था आप की दवा मेरा दर्द बल्कि सरदर्द बन जायेगी ?" ऐसा मैं कहना चाहती थी। पड़ोसन ने सिर हिलाया, "प्रिंसीपल साहिबा ! माइक्रो कम्प्यूटर टेक्नोलोजी पर भाषण तैय्यार करते हुये आप का क्या समय लगेगा। मैं गिड़गिड़ाई-"बहन जी मुझे न टेक्नोलोजी की जानकारी, न कम्प्यूटर रो वाकफियत और माइक्रो शब्द तो बिल्कुल पहुंच से बाहर है।" वह सजे हुए अध्यक्ष की तरह बोली- "अजी वही अध्यक्षीय भाषण सब से सफल होता है जिसमें अध्यक्ष का भोलापन टपके। आपने देखा नहीं,

बड़े-बड़े दिग्गज बड़ी-बड़ी महफ़िलों से लेकर पार्लियोमेण्ट तक में सो जाते हैं ताकि वह अपने वक्तव्य में भोलापन बरकरार रख सकें।'' तो साहब, ओखली में सर देने के बाद यह पहली मूसल की चोट थी। और उसके बाद, तो चोट पर चोट थी। अब तो उन्होंने हमारा क्लाइन टेल भी संभाल लिया था। लोग हमारे नख़रे क्यों बरदाश्त करते जब उन्हें सहर्ष स्वीकार करने वाली आसामी मिल गई थी। विशेषरूप से जब उन्हें हर बार कार्य सम्पन्न होने पर दमदार चाय भी पिलाती। एक दिन घबराकर मैं उन के घर चली गई क्योंकि मेरे घर आकर तो वह मुझे मना ही लेती थीं। अब के हमने मनाने की ठानी। ''बहन जी अब यह अध्यक्षता के आफर स्वीकारने बंद कीजिये या पुराने भाषण से काम चलाइये। क्योंकि मेरा तबादला हो गया है।'' ''क्या कहती हैं बहन जी तबादला रुकवाइए। मुझे बताइये मेरे पति बड़े रसूख वाले हैं आप के मनिस्टर के पी. ए. तक को जानते हैं। देखिये बहन जी मैं कही की न रहूँगी। अगले हफ़्ते तो मेरा सौवां भाषण है। कुछ कह दीजिये मेरा पर्सनल प्राबलम है।'' ''हां कह दूंगी मेरा अध्यक्षीय प्राबलम है'', मैं कहना चाहती थी। हमने हार कर घुटने टेक दिये लेकिन साथ ही चेतावनी दी अब तौबा कर लीजिये भाषणों का शतक बहुत होता है। उसके बाद तो कवि माघ के पास भी नया शब्द न बचता। ''ठीक मैं तौबा कर लूंगी लेकिन इस बार तो''-और हम अपनी अस्वीकृत प्रार्थना को लेकर लौट आये। हम से तो वह योग्य ठहरी जो हर बार हमें मनवा लेती हैं। वाकई अध्यक्ष बनने का जन्मसिद्ध अधिकार उन्हीं को है। एक महीना चैन से निकला। एक दिन वह फिर अपनी परिचित मुस्कान के साथ आ धमकीं। उन के मुंह का भाव उस खिलाड़ी का सा था जो शतक बनाने के बाद चाय के वक़फे के उपरान्त फिर मैदान में उतरता है। अन्तर केवल इतना था कि चाय के अन्तराल से पहले आईं थीं और वही अन्तराल उन्हें मेरे घर बिताना था। आते ही बोली ''रुकवा दिया न तबादला ? अब तो हमारा भी कुछ काम कीजिये। एक पार्टी अध्यक्षता''.... नहीं! नहीं! नहीं......! मैं ज़ोर से चिल्लाई। इतनी बेदर्द न बनो। एक दफा की मांगी हुई चायपत्ती के इतने दाम न वसूलो।'' वाले भाव आंखों में लाकर मैंने उनकी तरफ देखा। आप शतक बनाने के बाद इस पेशे से सन्यास लेने का वादा कर चुकी हैं। भावुक होकर हम गाने ही चले थे ''जो वादा किया वह निभाना पड़ेगा'' कि उन्होंने तीर छोड़ा। ''अजी बहन जी वह वादा ही क्या जो वफा हो गया और फिर चोटी के खिलाड़ी तो दोहरा शतक भी बनाते हैं।'' हम पर गाज गिरी-सचिन तेन्दुलकर, रिकी पोंटिंग, ब्रायन लारा बल्ला घुमा कर हमें डराने लगे। वे बदस्तूर मुस्कुराये जा रही थीं और हम बुदबुदा रहे थे। अरे! नहीं! दोबारा नहीं।

०००

अहसान

❐ डॉ. रेखा व्यास

अहसान और इन्सान का नाम साम्य ही नहीं चोली दामन का साथ लगता है। अहसान लिया भी जाता है तथा किया भी जाता है। जो अहसान करके जाये नहीं या दूसरे में कृतज्ञता के भाव पैदा नहीं कर सके वह अहसान व्यर्थ-निष्फल चला जाता है। अहसान प्रति अहसान के रूप में फलित होता है उपर्युक्त अहसान उस फल से वंचित हो जाता है।

अहसान कई प्रकार से किया जाता है। अक्सर इसमें किसी का काम किया जाता है। किसी के लिए कुछ-न-कुछ करने का भाव तो इसमें रहता ही है। भाव से तात्पर्य है कि किया ही जाता है। अहसान तभी अहसान के रूप में मूल्यांकित होता है जब प्रतिपक्षी को उसके परिणाम से लाभ हो। लाभ न होने पर चाहे कितनी ही दौड़-धूप और धतड़-मतड़ की हो पर आप उसे करने का शुद्ध लाभ नहीं ले सकते। आपकी मेहनत के बजाय इसका फल परिणाम पर अटका हुआ है इसमें कर्मवाद का प्रतिफलन फलवाद में न हो तो वह निरर्थक सिद्ध होता है। यहां गीत की गेयता का स्वर बदल जाता है आरोह-अवरोह और अवरोह-आरोह बन जाता है।

अहसान करने का वास्तविक आनंद तभी आता है जब उसे मान्यता मिल जाये। अहसान लेने वाला अक्सर देने वाले को उसका श्रेय नहीं देना चाहता। चतुर होशियार व्यक्ति उसे ले ही लेता है। कुछ उनसे भी अधिक चतुर होते हैं वे जिसके माध्यम से अहसान लिया है उसे उस श्रेय को चुकता करने की बजाय सीधे उसे चुका देते हैं जिससे अहसान लिया गया है।

कुछ लोगों में दुनियादारी या कृतज्ञता कुछ भी कह लीजिए वो इतनी कूट-कूटकर भरी होती है कि वे जहां आवश्यकता-औचित्य कुछ न हो वहां भी अहसान मानते ही रहते हैं। लुढ़क-लुढ़ककर महादेव बने लोगों का यह जीवन-दर्शन है। वे न मन में अहसान मानते हैं न करते हैं पर ऊपर से स्वयं को अकिंचन दिखाते हुए दूसरों को ही श्रेय बांटते रहते हैं। ऐसे व्यक्तियों का काम कभी नहीं अटकता। अहसानमंद लोग भीतर से उदार होते हैं या कह लें कि भीतर से कैसे भी हों परन्तु ऊपर से वैसी ही उदारता दिखाते हैं। उन्हें उनका भावजगत व्यथित नहीं करता। उन्हें यह पीड़ा भी नहीं सताती कि अहसान के खाते में क्या कुछ बढ़ता जा रहा है। इस जोड़ बाकी का गणित उनके हिसाब से देखा जाए तो सदैव धनात्मक ही होता है ऋणात्मक तो कभी होता ही नहीं।

---

*797-तिमारपुर, दिल्ली 54

अहसान चोरी कोई करे तो उसे करने दीजिए .... आजकल सभी समझते हैं। आमतौर पर अहसान लेने वाला अहसान करने वाले से बड़ा होता है। वह या तो उसके बहुत गुण गाने लगता है या पूरी तरह मुँह ही चुरा लेता है।

कुछ घाघ अहसान करने वालों की ओट में ऊँट आ जाता है तो अपने अहसान का लाभ उस व्यक्ति को नहीं लेने देते। यथा येन-केन प्रकारेण उसे सर्वात्मना वंचित ही करने की चेष्टा करते हैं। अहसान ले चुकने के बाद उसे मानने की मजबूरी नहीं रहती। अतः कुछ व्यावसायिक अहसानकर्ता अपना काम करके अपना भी लाभ कर करा लेते हैं ताकि उन्हें इस बात की कोई पीड़ा न रहे कि कल को किसी ने उनका अहसान माना नहीं।

कुछ शुद्ध स्वार्थ भाव से किए गए अहसान अपना हिसाब-किताब तुरंत चुकता कर देते हैं। इस हाथ दे उस हाथ ले वाली नियति को कोई क्या करे वही उन्हें रामबाण औषध लगती है। इससे व्यर्थ मन में कोई कष्ट नहीं रहता।

यदि आपकों अहसान करने का शौक ही है तो आप अहसान किये बिना नहीं रह सकते तो इसके लिए नेकी कर दरिया में डाल वाली नीति ही अपनाना श्रेयस्कर होगा अन्यथा आप पराये दुःख से दुबले हो जायेंगे तथा आपकी कोई फ्रिक तक नहीं करेगा।

केवल मौखिक अहसान करके भी किसी को भाग्य के भरोसे बहुत कुछ मिल जाता है तो किसी को कुछ नहीं मिलता। कुछ फोन घुमाते-घुमाते ही अहसान की गाड़ी चला लेते हैं तो कुछ लोग बहुत कुछ करके भी कुछ हासिल नहीं कर पाते। यह सब भाग्य तथा तरकीब की बात है। आदमी के टेक्ट और हुनर की परीक्षा है।

अहसान की एवज़ में अहसान या उसकी कीमत की अदायगी हो जाने पर भी कुछ लोग परेशान रहते हैं। ये अपेक्षा करते हैं कि लोग उनके प्रति धन्यवादी रहें तो यह मृगमरीचिका ही है। यह सब तो दुनियादारी है। भला इसी में है कि हाथों-हाथ हिसाब चुकता कर लिया जाये। न कर पायें तो इसे अपनी अकर्मण्यता-अयोग्यता कुछ भी मानकर सहन कर लीजिए। सहनशीलता भाव-जगत के संतुलन के लिए ठीक है अन्यथा अहसान के पथ में बने मध्येता व्यर्थ ही मारे-मारे घूमते रहते हैं। यदि अहसान लेकर भी उस भाव को अनुभव नहीं करना है तो उनसे अच्छी-खासी दोस्ती पैदा कर लीजिए। देखिये, आप काम करवाकर भी अहसान अनुभव करने जैसा भावात्मक भार अनुभव नहीं करेगे।

कृतघ्न होकर जीने का बहुत मजा है। मन बौराया रहता है। इस प्रवृत्ति के अन्तर्गत किया गया अहसान काठ की हांडी की तरह होता है जिसे दूजी बार चढ़ाना मुश्किल क्या असंभव सा ही रहता है। अर्थात् काठ की हांडी दोबारा चूल्हे पर चढ़ाने का जहमत नहीं उठानी पड़ती। एक-बार में ही हांडी और हांडी में बनने वाली वस्तु जलकर राख हो जाती है।

०००

विवेकी

सनमुख, देखते-देखते मेरे,
अपने सब कपड़ों पर उस ने,
जगह-जगह पर नाम लिखा इक,
और फिर मेरे देखते ही उस ने,
कपड़े तार-तार कर डाले,
फिर वो टुकड़े चूम-चूम कर,
सब अंगों पर उस ने बांधे,
और ज़ोर से मार ठहाका,
फिर मस्ती में नाच-नाच कर,
ज़ोर-ज़ोर से दी आवाज़ें,
देख तेरे गहनों से मैंने,
अंग-अंग सिंगार लिया है,
देख तेरे गहनों से सज कर
कितनी सुंदर दिखती हूँ मैं,
कितनी प्यारी लगती हूँ मैं
देख यह सारी लोक लुकाई
कितनी पागल है कि मुझको
पागल-पागल कह रही है,
पगली कह पुकार रही है॥

मशीन

❐ मूल : विरेन्द्र केसर
अनु : धीरज केसर

एक मशीन सम्पूर्ण पूरण,
हर पल नयी नवेली जैसे,
अपने काम में अति निपुण,
अति प्यारी अति न्यारी,
कार्य अत्युत्तम कुशल है उसका,
पर इक दिन जानें किस कारण,
उस का एक न्यारा पुरजा,
जाने कैसे खुल के निकल के,
जाने कैसे कहां गिर पड़ा,
या फिर कैसे कुचला गया वह!
कार्य कुशलता वैसी ही है,
अभी भी थकती, रुकती नहीं है,
पर मशीन की ध्वनि है कहती,
अंतस में कोई खालीपन है,
भीतर कहीं कमी है भारी!

०००

* 67-Extn, जानीपुर कलौनी, जम्मू।

मधुर मिलन

आज मिलन सम्पूर्ण हुआ है!
आज से कुछ दशक ही पूर्व,
पहली बार मिलन के पल में,
मेरे उस के मध्य में आकर,
मेरा जढ़ "मैं" बीच आ बैठा,
या फिर ऐसा लगा के जैसे,
उस का "मैं" पहले आ बैठा,
या फिर हम दोनों के ही "मैं",
मध्य में दोनों के आ बैठे!
या फिर जाने कितनी बार ही,
मेरा उच्छृंखल सा प्रेम ही,
मेरे उस के मध्य में आकर,
मधुर मिलन को ग्रस गया वह,
या फिर उस के लोभी मन ने,
मधुर मिलन को होने दिया ना!!
अब इस घड़ी, इसी पहर में,
उम्र के इस पड़ाव पे आकर,
जब मेरे और उस के बीच में,
कुछ कहीं कण भर भी नहीं है,
अब जैसे, दोनों के बीच में,
दोनों नज़र नहीं हैं आते,
अब तो जैसे दोनों इक हैं,
अब तो पूर्ण मिलन हुआ है,
आज मिलन सम्पूर्ण हुआ है!!

क्यों

वह मेरी कुछ लगती नहीं है,
वह तो यादों में भी नहीं है,
पूनम का वेदाग चांद वह,
और मैं इक पल ढलता जैसे!
उस से मिलन का मन भी नहीं है,
उस से कोई नाता भी नहीं है,
ना नाता रखने का मन है,
और ना ही वह सोच में मेरी,
मैं कोई नग्न टीला-सा जैसे,
और उस पार वह, बहती नदी-सी!!
ऐसे ही राह चलते-चलते,
मेरे निकट से गुज़र गई वह,
जैसे कोई सुखद-सा पल
पल-भर में ही बीत गया हो!!
उस बेला से इस बेला तक
अजब नशा है कण-कण मेरे
अजब खुशी है चहूं दिशा में,
दिल, ज्यों घोड़ा बिन लगाम के,
नाच रहा है चहूं ओर में!!
इतना सब कुछ क्यों हुआ है,
मुझ में उसका कुछ भी नहीं है,
कुछ भी नहीं कि खुशी पर क्यों है,
मेरे सारे रोम-रोम में
नशा भरा-सा इतना क्यों है!

ooo

संतोष

❒ प्रवीन कुमार

दिसम्बर महीने की एक सर्द शाम में शामलाल मेहरा अपने दोस्त सतपाल के साथ बैठक में चाय की चुस्कियां ले रहे थे। शामलाल की पत्नी रसोई से पकौड़े लेकर आई और पकौड़ों की प्लेट सतपाल के आगे करती हुई बोली, ''लिजिए भाई साहब पकौड़े खाएं।''

सतपाल पकौड़ा मुँह में डालते हुए, ''भाभी जी आपके हाथ के बने हुए पकौड़ों का तो जबाब नहीं।''

घर में उस समय और कोई भी नहीं था। शामलाल की बेटी की शादी हो चुकी थी बड़ा बेटा डाक्टर था और छोटे ने अभी थोड़े दिन पहले ही K.A.S. का इन्ट्रव्यू दिया था, जिसके नतीजे अभी घोषित नहीं हुए थे।

तभी शामलाल का छोटा बेटा अपने हाथ में मिठाई का डिब्बा लिए अन्दर आता है, और अपने माता-पिता के चरण-स्पर्श करता है। ''पिता जी मैं K.A.S. में चुन लिया गया हूं।'' सुनकर शामलाल का सीना गर्व से चौड़ा हो जाता है।

''देखा सतपाल, आज मेरे दोनों बेटे अफसर बन गए हैं'', मिठाई का डिब्बा सतपाल की और करते हुए।

सतपाल मिठाई खाते हुए, ''बधाई हो शामलाल, यह सब तुम्हारी ही मेहनत और ईमानदारी का नतीजा है।'' इतने में बड़ा बेटा भी आ जाता है, सभी खुशी से चाय और पकौड़ों का आनन्द लेने लगे।

तभी दरवाज़े पर दस्तक हुई। बड़े बेटे ने दरवाज़ा खोला, सामने दो अनजान युवक खड़े थे जिनकी उम्र करीब-करीब सत्रह-अठरह साल के बीच होगी।

''नमस्कार! शामलाल जी घर पर हैं'' एक युवक ने कहा। बड़ा बेटा उन्हें सीधे बैठक में ले आया।

''पिता जी यह लोग आपसे मिलना चाहते हैं।'' बैठिए शामलाल ने सोफे की तरफ इशारा करते हुए कहा।

''माफ किजिए मैंने आपको पहचाना नहीं। कहिए क्या काम है।'' ''हम गाँव रामकोट से आए हैं, और हम ठाकुर शमशेर सिंह के पोते हैं।'' दोनों युवक एक साथ बोले।

ठाकुर जी का नाम सुनते ही शामलाल ने उन दोनों को अपने सीने से लगा लिया, ''ठाकुर जी कैसे हैं? उनकी तबीयत कैसी है? आपके पिता रणधीर जी कैसे हैं?''

---

* *गांव-चक्क जरालां, पो० आ० घणाल, तहसील बिशनाह-181132 (जम्मू)*

एक ही साँस में शामलाल ने पता नहीं कितने ही प्रश्न पूछ लिए। तभी शामलाल की पत्नी रसोई से चाय लेकर आती है, ''अरे आप भी, इन्हें चाय-पानी के लिए तो पूछो।'' शामलाल की पत्नी ने चाय देते हुए कहा। ''लो बेटा चाय पियो, इसे अपना ही घर समझो, आपके दादा जी के हम पर बहुत एहसान हैं, सब कुछ उन्हीं का तो दिया हुआ है।''

चाय खतम करते हुए एक युवक ने कहा ''दादा जी का तो दो साल पहले ही देहाँत हो गया था।'' यह खबर सुनकर शामलाल की आंखों में आँसू आ गए और ठाकुर शमशेर सिंह का चेहरा उनकी आखों के घूमने लगा। तभी दूसरा युवक बोला,- ''हमें पिता जी ने यहाँ भेजा है, पिता जी आपसे मिलना चाहते हैं, वो जो शहर में हमारी ज़मीन जो हमारे दादा जी ने आपको दी थी, पिताजी उसके बारे में कुछ बात करना चाहते हैं, कह रहे थे कि अब आपका परिवार शहर में अच्छी तरह से जम चुका है, इसलिए अब वो जमीन हमें वापिस दे देनी चाहिए।''

शामलाल ने कहा -''ठीक है, मैं कल ही आपके पिता जी से मिल लूँगा, ठाकुर जी को मेरी तरफ से नमस्कार कहना।''

दोनों युवक वापिस चले गए।

''यह किस ज़मीन की बात कर रहे हैं और यह ठाकुर शमशेर सिंह कौन है।'' सतपाल ने हैरानी से पूछा, तभी शामलाल बड़े बेटे ने कहा ''पिता जी कहीं ये उस ज़मीन की बात तो नहीं कर रहे जो शहर के पाश इलाके में है, बह ज़मीन तो हमारे नाम पर है, वे अपना हक कैसे जमा रहे हैं।''

''करोड़ों रुपए की जमीन है शामलाल'', सतपाल ने कहा, ''क्या ये ज़मीन उन्हें दे दोगे?''

शामलाल ने गहरी साँस छोड़ते हुए कहा,- ''कल ठाकुर जी से मिल लेते हैं, फिर कोई फैसला लेंगे।''

अँधेरा होने लगा था, सतपाल अपने घर को चला गया, सभी ने खाना खाया, बेटे अपने-अपने कमरों में चले गए। शामलाल भी उठ कर अपने शयनकक्ष की तरफ चल पड़ा।

बिस्तर पर लेटकर, सामने जलते हुए हरे रंग के बल्ब की रोशनी को टकटकी लगाए देखते हुए शामलाल ज़मीन के बारे में सोचने लगा, क्या ज़मीन वापिस देनी चाहिए, क्यों वापिस देनी चाहिए? आखिर यह जमीन उनके नाम पर है। कानूनी तौर पर भी यह जमीन उनकी है। वह यह जमीन कैसे ले सकते हैं। नहीं! मैं यह जमीन उन्हें वापिस नहीं दूंगा। तो क्या जो एहसान ठाकुर जी ने तुम पर किए थे, उनका यह सिला दोगे। लेकिन ज़मीन तो ठाकुर शमशेर सिंह की भी नहीं है ये तो बाबू जी ने दी थी। ऐसे बहुत सारे प्रश्नों के उत्तर शामलाल ढूंढ़ने की कोशिश कर रहा था।

अचानक लाइट बंद हो जाती है, शामलाल आंखें बंद करके अपने अतीत में खो जाता है। बल्ब की रोशनी की जगह अब एक तेल के दीए की हल्की-सी रोशनी ने ले ली थी, और उस रोशनी में शामलाल की माँ उपलों की धीमी आंच पर मक्की की रोटी बना रही थी।

''शामू बेटा आ खाना खा ले''- मां ने मक्की की रोटी पर नमक लगाते हुए कहा।

नमक ही तो था सिर्फ घर में। शामलाल की उम्र उस समय छ: साल की थी। घर में कमाने वाला कोई नहीं था। पिताजी देश के बटवारे के समय मची गदर की भेंट चढ़ गए थे। शामू और उसकी माँ ने भाग कर अपनी जान बचाई थी। दूर पहाड़ों के बीच बसे राजपूतों के एक गांव रामकोट में उन्होंने शरण ली थी। चूंकि वह दलित जाति के थे, इसलिए गाँव के बाहर ही उन्होंने एक कच्ची झोंपड़ी बना ली, और माँ-बेटा दोनों वहां रहने लगे। माँ कहीं से एक गाय ले आई थी।

शामू गाय को लेकर सुबह ही घर से निकल पड़ता और सारा दिन जंगल में गाय को चराकर, दिन ढलने पर झोंपड़ी में आता, बस यही शामू की दिनचर्या थी। मां ठाकुरों के खेतों में काम करती थी, यूं उनका गुज़ारा चलता था।

दो साल इसी तरह बीत गए, शामू अब आठ साल का हो गया था। गाय ने एक बछड़े को जन्म दिया था।

शामू दोनों को लेकर जंगल में चराने चला जाता, एक दिन जंगल से लौटते समय शामू की गाय दूसरे गाँव की ओर चली गई। शामू भी उसके पीछे चल पड़ा। वहां शामू ने देखा बहुत से बच्चे एक जगह पर बैठे हैं, और एक आदमी उनसे कुछ पूछ रहा हैं, परन्तु बच्चे जबाब नहीं दे पा रहे हैं। शामू ने वह जबाब दूर से ही दे दिए।

यह गांव का सरकारी स्कूल था यहां मास्टर जी बच्चों को पढ़ा रहे थे। उन्होंने शामू को अपने पास बुलाया और पूछा, ''बेटा कौन से स्कूल में पढ़ते हो?''

''स्कूल!'' यह शब्द शायद पहली बार शामू के कानों में पड़ा था।

शामू चुप रहा।

मास्टर जी ने पूछा,- ''कौन से गाँव के हो।'' शामू ने अपने गाँव का नाम बताया। मास्टर जी ने शामू को स्कूल के बारे में समझाया और कहा, ''बेटा पढ़ना बहुत ज़रूरी है। तुम एक अच्छे लड़के हो, इसलिए रोज़ स्कूल में पढ़ने आया करो। अपनी माता जी से कहो कि स्कूल में दाखिला करा दें।''

उस दिन से शामू को दूसरे गाँव में ही अंधेरा हो जाता है। उसका घर वहां से बीस कि. मी. दूर था। उधर शामू की मां घर में परेशान थी। अजीब-अजीब से ख़्याल उसके मन में आ रहे थे। शामू आधी रात के बाद घर पहुंचा, शामू को सही सलामत देखकर उसकी जान-में-जान आई, आखिर शामू ही तो उसके बुढ़ापे का सहारा था।

घर पडुंचते ही शामू ने मां को स्कूल वाली घटना बताई और मां से कहा -

''मां मैं कल से स्कूल जाऊँगा।''

''हां-हां चले जाना, पर अब मुँह धोकर खाना तो खा लो, सुबह से तुम ने खाना भी नहीं खाया है?''

शामू ने मजे से मक्की की सूखी रोटी जो मां ने शायद सुबह की ही बनाई थी खाई और मां की गोद में सो गया।

पौ फटते ही शामू जल्दी से उठा, गाय और बछड़े को साथ लेकर जंगल में चला गया, जानवरों को जंगल में छोड़कर शामू स्कूल चला गया, मां ने उसका दाखिला करवाया और इस तरह शामू की पढ़ाई शुरू हो गई।

शामू कक्षा में मन लगाकर पढ़ता, और मास्टर जी का बहुत आदर करता। मास्टर जी उसकी मेहनत और लगन से बहुत प्रभावित हुए।

एक दिन कक्षा में श्यामपट पर मास्टर जी ने संस्कृत-भाषा में एक श्लोक लिखा था-

''आस्ते भग आसीनस्य ऊर्ध्वस्तिष्ठति तिष्ठत:
शैते मियधमानस्य चरति चरता भग-चरैवेति, चरैवेति।''

शामू श्लोक को पढ़ने की कोशिश करने लगा। लेकिन उसकी समझ में कुछ नहीं आया।

तब मास्टर जी श्लोक का अर्थ बताते हैं, और कहते हैं बेटा शामू ''जो बैठा रहता है, उसका सौभाग्य भी बैठ जाता है और खड़े रहने वाले का सौभाग्य खड़ा हो जाता है, सोने वाले का सोता रहता है और जो चलता है, उसका सौभाग्य प्रगति करता है। अत: निरंतर श्रम करते हुए आगे बढ़ते चलो, बढ़ते ही चलो।

शामू श्लोक तो याद नहीं कर पाया, परन्तु उसके अर्थ को उसने अच्छी तरहा से अपने दिमाग में बिठा लिया। शामू उस समय चौथी कक्षा में पढ़ता था। घर से बीस कि. मी. दूर स्कूल जाना और जानवरों का भी ख़्याल रखना, उसकी रोज़मर्रा की जिन्दगी थी, मां उसे पढ़ते देखती तो बहुत खुश होती। वह कहती कि एक दिन मेरा शामू मास्टर बनेगा और मेरी सेवा करेगा।

परन्तु नियति को कुछ और ही मंजूर था। मां को टी.बी. हो गई और तीन महीने के भीतर ही शामू की मां का देहांत हो गया।

बालक शामू उस दिन बहुत रोया, मां के सिवा उसका इस दुनिया में कोई और था ही नहीं। गांव वालों ने मिल कर मां का संस्कार किया।

शामू पर तो दुखों का पहाड़ टूट पड़ा, अनाथ शामू अब स्कूल कैसे जाएगा, कैसे अपनी मां का सपना पूरा करेगा, यह सोचते हुए शामू अकेला ही अपनी झोंपड़ी में गया, गांव के सभी लोग अपने-अपने घरों को लौट गए, किसी को भी उस अनाथ पर दया नहीं आई।

कहते हैं भगवान अगर एक द्वार बंद करता है तो दूसरा द्वार खोल देता है, गांव के ही एक वयोवृद्ध राजपूत ठाकुर बलदेव सिंह, लोग जिन्हें ''बाऊ'' जी कह कर सम्बोधित करते थे को उस बच्चे पर दया आ गई, बाऊ जी के घर पर उनकी बूढ़ी पत्नी शीला और बेटी रानी, जिसकी उम्र सोलह साल की होगी, के इलावा और कोई नहीं था। बाऊ जी शामू को अपने घर ले आए और प्यार से उसके सिर पर हाथ फेरा।

नन्हें शामू की आंखों से आंसू वह रहे थे। शामू को रह-रह कर अपने मास्टर जी की बात याद आती, ''चलना ही ज़िंदगी है, बढ़ते चलो, बढ़ते चलो।''

शामू ने फिर से स्कूल जाना शुरू दिया। रानी को वह अपनी बहन, बाऊ जी और अम्मा को शामू माता-पिता समझने लगा। बह भी शामू को अपने बेटे की तरह प्यार करते।

वक़्त का पहिया अपनी चाल से निरंतर चला जा रहा था। शामू अब आठवीं कक्षा में था। बाऊ जी बहुत बूढ़े हो चुके थे, इसलिए खेतों का सारा काम शामू ही देखता था, सब काम वह पूरी ईमानदारी मेहनत और लगन से करता था। रानी की भी शादी हो चुकी थी, रानी की शादी में शामू बहुत रोया था। रानी भी बहुत रोई थी, वह हर साल रक्षाबन्धन के दिन उसको राखी बांधती थी।

शामू ने आठवीं की कक्षा बड़े ही अच्छे अंकों से उत्तीर्ण कर ली, उस समय आठवीं की कक्षा भी बहुत कम ही लोग पास कर पाते थे। शामू को याद है, उस दिन बाऊ जी ने पूरे गांव में मिठाई बांटी थी। और सबको कह रहे थे कि उनके बेटे शामू ने आठवीं पास कर ली है। अब वह आगे पढ़ेगा और मेरा नाम रोशन करेगा। बाऊ जी की ऐसी बातें सुनकर शामू और ज़्यादा मेहनत और लगन से अपनी पढ़ाई पर ध्यान देता।

बाऊ जी अब बहुत बूढ़े हो चुके थे, अम्मा का भी देहांत हो गया। बाऊ जी सोचने लगे कि अब उनका समय भी आने वाला है। इसलिए जाने से पहले अपनी जमीन-जायदाद शामू को दे दी जाए, परन्तु शामू अभी छोटा था। इसलिए बाऊ जी ने अपने छोटे भाई ठाकुर शमशेर सिंह को सारी जमीन दे दी और कहा जब शामू बड़ा हो जाए तो उसे यह जमीन दे देना। उन्होंने अपने छोटे भाई को समझाया कि इस शामू नाम के पौधे को कभी भी सूखने न देना।

और फिर एक दिन बाऊ जी ने भी अपनी आंखें हमेशा के लिए बंद कर ली। शामू एक बार फिर अनाथ हो गया। ठाकुर शमशेर सिंह भी बहुत ही अच्छे इन्सान थे, उनका एक ही बेटा था कुंवर रणधीर सिंह। शामू और रणधीर दोनों एक साथ पढ़ने जाते। ठाकुर शमशेर सिंह दोनों को एक जैसा प्यार करते।

शामू ने दसवीं की कक्षा उत्तीर्ण कर ली और पूरे जिले में प्रथम स्थान हासिल किया। शामू आज बहुत खुश था, उसकी मां, उसके बाऊ जी और अम्मा की मेहनत से ही वह यह मुकाम हासिल कर पाया था। शामू आगे पढ़ना चाहता था, लेकिन ठाकुर शमशेर सिंह जी ने अपने एक दोस्त जो उस समय तहसीलदार थे, को कह कर शामू को स्कूल में मास्टर लगवा दिया।

शामू अब अपने गाँव के बच्चों को स्कूल में पढ़ाता, इसी तरह दो साल बीत गए। शमशेर सिंह ने बाऊ जी के कहे अनुसार सारी जमीन-जायदाद शामू को दे दी।

कुछ समय बाद शामू का स्थानान्तरण शहर के हाई स्कूल में हो गया और उसे नौकरी के लिए शहर आना पड़ा। वहीं पर उसकी मुलाकात मीरां से हुई, मीरां उसकी सहकर्मी थी, सुंदर, सुशील और संस्कार सम्पन्न लड़की, शामलाल मीरां में अपनी अर्धांगनी को देखने लगा, दोनों आपस में मिलते प्यार भरी बातें करते।

जैसे-जैसे समय बीतता गया दोनों एक-दूसरे के करीब आते गए, शामलाल ने उसे अपने बचपन की दुख-तकलीफों से अवगत कराया, शामू की कहानी सुनकर मीरां की आंखों में आंसू आ गए।

शामू ने मीरां का हाथ बड़ी ही सहजता से पकड़ा और कहा ''क्या हम पति-पत्नी बन सकते हैं?''

मीरां कुछ नहीं बोली, बस होठों पर हल्की-सी मुस्कान बिखेरते हुए उसने शर्म से पलकें झुकाकर अपनी सहमती जताई।

पंडित जी से अच्छा महूर्त निकलवाकर उन्होंने शादी कर ली और विवाह के पवित्र बन्धन में बँध गए।

समय अपनी रफ़्तार से आगे बढ़ता रहा, एक साल के भीतर ही वे दो से तीन हो गए. शामू के घर एक लड़के ने जन्म लिया। नन्हें बच्चे की किलकारियों से उसके घर का कोना-कोना झूम उठा। शामू ने उसका नाम विजय रखा। कुछ समय बाद शामू के घर जुड़वां बच्चों ने जन्म लिया, एक लड़की और एक लड़का। शामू बहुत खुश हुआ।

रह-रह कर शामू को बाऊ जी की याद आती, जिन्होंने शामू को सहारा दिया था। वरना शामू आज एक अनपढ़ और गँवार की ज़िंदगी जी रहा होता, सोचकर उसकी आंखें भर आतीं।

आज शामलाल मेहरा एक इज्जतदार रिटायर्ड मास्टर है, एक डाक्टर का पिता है, अपने परिवार में वह बहुत खुश है, बाऊ जी ने शामू को आठ बीघा जमीन दी, जिसमें से सात बीघा जमीन तो गाँव में थी परन्तु एक बीघा जमीन शहर के बीचो-बीच थी। करोड़ों रुपए की जमीन थी वो।

ठाकुर रणधीर के बेटे, इसी ज़मीन की बात कर रहे थे, शायद बच्चों के मन में जमीन का लालच आ गया हो, जमीन की कीमतें भी तो आजकल आसमान छू रही हैं, जिससे किसी का भी दिल बेईमान हो सकता है।

आज शामू के पास भगवान का दिया हुआ सब कुछ है, उसने फैसला किया कि वह जमीन वापिस दे देगा। -''हां, मैं वह जमीन बापिस दे दूँगा। वापिस दे दूंगा।'' शामलाल नींद में बड़बड़ाने लगा और उसकी नींद खुल गई। मंदिर से शँख की ध्वनि और घंटियों की आवाज़ से शामलाल को सुबह का अनुभव हुआ। तब तक उनकी पत्नी और बच्चे भी उनके पास आ गए।

''क्या हुआ पिता जी? तबीयत तो ठीक है।'' बड़े बेटे ने पूछा। कुछ नहीं, हंसते हुए शामलाल ने गहरी साँस ली। शामलाल ने पत्नी और बेटों को अपना फैसला सुनाया। सभी ने उनके इस फैसले का सम्मान किया।

सूरज इस समय शिवालिक पहाड़ियों के पीछे से निकल चुका था। अंधकार के बादल शामलाल की आँखों सें छंट चुके थे। नहा-धोकर उसने रामकोट जाने की तैयारी कर ली और बस अड्डे से रामकोट जाने वाली बस पकड़ ली। बस अपनी रफ़्तार से चली जा रही है। शहर के भीड़-भाड़ वाले इलाके से निकल कर बस दूर पहाड़ियों के रास्ते से गुज़रती हुई, रामकोट की

तरफ बढ़ रही थी, शामलाल खिड़की के पास बैठा था। खिड़की के शीशे पर धूँध की परत को हटाते हुए वह बाहर देखने की कोशिश करने लगा। जैसे-जैसे बस रामकोट की तरफ बढ़ती वैसे ही शामलाल के दिल की धड़कन तेज होती जाती। बचपन की यादों से उसकी आंखें भर जाती।

''नमस्कार ठाकुर जी।''

''अरे शामलाल आओ-आओ मैं तुम्हारा ही इन्तजार कर रहा था। आओ बैठो।''

''आपने मुझे याद किया''- शामलाल ने बैठते हुए कहा।

''हां, बच्चे शहर की जमीन के बारे में जिद्द कर रहे थे, वह वहां पर कोई शॉपिंग काम्पलैक्स खोलना चाहते हैं। सो मैंने कहा जमीन तो अपनी ही है, कहो क्या फैसला किया है।''

शामलाल ने जमीन के कागज़ जो वे घर से लेकर आया था ठाकुर जी को देते हुए कहा।

''ठाकुर साहब, मैंने सारी जमीन आपके नाम कर दी है।''

ठाकुर जी को काटो तो खून नहीं, उन्हें शामलाल से ऐसे स्पष्ट उत्तर की उम्मीद नहीं थी।

ठाकुर जी के मन में गहरी चोट लगी, शर्मिन्दगी से उनकी आंखें झुक गई।

''शामलाल बेटों की जिद ने मुझे अंधा कर दिया था। मुझे सही गलत में फर्क दिखाई नहीं दिया। यह जमीन सिर्फ तुम्हारी है। सिर्फ तुम्हारी।'' ''क्या आपके बच्चे मेरे बच्चे नहीं हैं?''

अगर वह शहर में शॉपिंग काम्पलैक्स खोलना चाहते हैं तो उन्हें खोलने दीजिए। आपको तो खुश होना चाहिए।''

''नहीं! शामलाल मैं ये जमीन नहीं ले सकता।''

''परन्तु ठाकुर साहब मैं इतनी सारी जमीन का क्या करूँगा।

चलो ऐसा करते हैं, आपके बेटे वहां पर एक शॉपिंग काम्पलैक्स बना लेते हैं, और मेरा डाक्टर बेटा वहीं पर ''बाऊ'' जी के नाम पर एक अस्पताल खोल लेगा। इस तरह बच्चे भी खुश हो जाएंगे, और उनमें प्यार भी बना रहेगा। यूं दोनों परिवार आपस में जुड़े रहेंगे, एक नए रिश्ते की डोर से।'' इतना कहकर वह चुप हो गया। उसके चेहरे से संतोष झलक रहा था।

बस रामकोट से शहर की तरफ आ रही है। शामलाल संतुश्ट था, पहाड़ धीरे-धीरे परछाइयां बनते नज़र आ रहे थे। बस में एक गीत बज रहा था ''बहुत दिया देने वाले ने, तुझ को, आंखों में न समाए तो क्या कीजे।''

ooo

रिश्ते

❑ प्रवीण कुमारी

रिश्तों के धागों को
कभी न यूं उलझाओ
टूट जाएंगे, सुलझाने से ये
छोटी-सी इस बात पर, सोच दौड़ाओ
कुछ कोमल और कुछ कठोर
तंतुओं से बने होते हैं ये रिश्ते
जो पलते हैं हमारे भावों तले
और
पुष्ट होते हैं हमारे संस्कारों तले

०००

सीमित

इस स्वार्थ भरी दुनिया में
सब खुद तक ही सीमित क्यों हैं?
क्या इतना स्वार्थी हो गया है इन्सान
जो पिलाता है उसे जिगर का खून
उसे पिलाने को पानी भी वह क्यों है परेशान
क्यों स्वार्थ खोजता है
सीमितता में भी अपना है भाग?
वह क्यों नहीं समझते कि
ईश्वरीय अंक की
अपने स्वार्थ से बाहर निकलने में ही शान।

०००

प्रभात-रूपसी

❑ दीपशिखा

विरल सितारों जड़ित
कजरारी साड़ी
पहने
पनघट से आई
करके स्नान
सिर पर
उठाए
अरुण-घट
जुड़े में गूंथे
पुष्प-हलचल
चीं-चीं
के पहन घुघंरू
चली आ रही है
प्रभात-रूपसी
छम-छम-छम

०००

वो लड़की

एक बाहर वर्षीय लड़की
चांद से गोल
चेहरे में
धंसी
कंचों-सी
दो
छोटी छोटी
आँखें
चार वर्ष पहले ही तो
खोया था
माँ को
तनिक
संभली ही थी
फिर
हुआ वज्रपात
उठ गया
पिता का भी साया
बिन
भाई-बहन के
जर्जर हुई
छत के
मकान से
झाँकते
सूरज-चाँद से
विस्मय-विषाद से
न जाने
क्या
पूछती है
वो लड़की?

०००

* 164, वार्ड नं. 5, आर.एस.पुरा।

जम्मू-कश्मीर के हिन्दी कवि बनाम कविता

❑ डॉ. चंचल डोगरा (शर्मा)

जम्मू-कश्मीर राज्य की हिन्दी कविता को राष्ट्रीय हिंदी कविता के समानान्तर चलते हुए, हम आज जिस मुकाम पर उसे खड़ा पाते हैं वहाँ तक इस लिखित काव्य ने पहुँचने के लिए करीब साढ़े चार सौ साल की डगर तय की है। जम्मू-कश्मीर राज्य की इस काव्य यात्रा अथवा कवि कर्म को हम स्वतंत्रतापूर्व और स्वातंत्र्योत्तर काल में विभाजित करकें देखेंगे। राज्य के प्रारंभिक हिन्दी काव्य का आकलन करने पर यह प्रमाणित होता है कि यहाँ की कविता राष्ट्रीय हिन्दी काव्य-धारा की अनुगामिनी रही है। प्रसिद्ध रहस्यवादी कवियित्री रूपाभवानी से लगभग पचास वर्ष पहले सन् 1572 में 'श्री वल्लभदेव कश्मीरी' ने सुलतान नाज़ुक शाह के समय बीस वर्ष की अथक साधना के पश्चात् 'रामचरित्र मानस' का हिन्दी अनुवाद तुलसीकृत रामायण नाम से किया। राष्ट्रीय हिन्दी साहित्य में यह समय चूँकि रीतिकाल का था अत: इस काल के काव्य में रीतिकालीन प्रवृत्तियां दृष्टिगोचर होती हैं। भड्डू (जम्मू-प्रान्त) के कवि दत्त ने पाँच वर्षों के परिश्रम के पश्चात् संवत् 1820 में महाभारत के द्रोण पर्व का पद्यानुवाद 'वीर विलास' नाम से किया। इन्होंने बत्तीस ग्रन्थों की रचना की। इनके द्वारा रचित कमलनेत्र स्तोत्र उत्तरी भारत में आज भी आरती के रूप में गाया जाता है -

''कमल नेत्र, कटि पीताम्बर, अधर मुरली गिरिधरम'' (1998-1885)

कवि दत्त के ही समकालीन मटन के रहने वाले भक्त गायक कवि परमानन्द कश्मीरी का लोक प्रिय हिन्दी काव्य 'राधा स्वयंबर' है। श्री कृष्ण राज़दान का भक्ति रस युक्त कश्मीरी मिश्रित हिन्दी का काव्य 'शिवलग्न' है। इसके अलावा लक्ष्मण जू, बुलबुल, ठाकुर जू मनवटी (1880-1923 ई), हलधर जू ककरू, मास्टर ज़िन्दा कौल (1880-1966) ने भी हिन्दी में काव्य रचना की। पं. नीलकण्ठ शर्मा तथा मास्टर जिन्दा कौल की भाषा संस्कृति निष्ठ थी-

स्वामिन्, सर्वेश्वर, सर्वाश्रम,
सर्वाकार प्रणाम
भगवान् विश्वात्मन् विश्वंभर
विश्वाधार प्रणाम।

कवि दत्त के पुत्र शिवराम बिलावर में स्थित भगवती सुकराला के उपासक थे एवं उनकी स्तुतियां रचा करते थे तथा उनके प्रपौत्र त्रिलोचन ने भी हिन्दी में कुछ रचनाएँ लिखी थीं।

इसी समय जम्मू के कवि सुन्दर (संवत् 1991) ने महाभारत के विराट पर्व का ब्रज में पद्यानुवाद किया जिसमें उन्होंने डोगरी के शब्दों का भी प्रयोग किया है। सत्रहवीं सदी के श्री त्रिलोचन ने 'नीति विनोद' की भूमिका में लिखा है -

''पिंगल न जानौं, नहीं जानौं रस राज को
रसिक पियारी बिहारी सों रटत हों।
भाषा को न लेश न प्रवेश कवि रायन में,
चार अपगुन पूल सौं डरत हों॥''

कविता के इस प्रारंभिक काल में इस समय भी ब्रज भाषा में भक्ति, माया, अध्यात्म, अद्वैव भावना से युक्त काव्य-रचना हो रही थी, जिस समय राष्ट्रीय स्तर पर भारतेन्दुयुग (1855) में कविता का मुख्य विषय देश-भक्ति, समाजिक-कुरीतियों का खण्डन, आर्थिक अवनति के प्रति क्षोभ, टैक्स की भयंकरता, विधवा-विवाह, बाल-विवाह का विरोध, रूढ़ियों का खण्डन, नए सामाजिक आन्दोलन व निजभाषा प्रेम आदि था। महाराजा रणवीर सिंह के निमंत्रण पर भारतेन्दु का काशी से जम्मू आगमन एक अद्भुत घटना थी। छन्नूलाल, नीलकण्ठ, मीहा सिंह, राजेन्द्र सिंह आदि उस समय ब्रज भाषा के स्थानीय कवि थे। स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व तीन दशकों तक देश-भर में हिन्दी के लिए जो भी आन्दोलन चला उसी का रूप जम्मू-कश्मीर राज्य के काव्य में भी प्रतिबिम्बित हुआ। सन् 1920 से सन् 1947 तक करीब सत्ताईस वर्षों तक हिन्दी के प्रचार पर विशेष बल दिया गया। द्विवेदी युग (1900-1920) के पश्चात् भी यहाँ सृजनात्मक लेखन की अपेक्षा भाषा प्रचार पर कार्य अधिक तीव्रता से हुआ। राज्य के इस भाषा आन्दोलन के मूल में राष्ट्रभाषा के प्रति जन-जागृति की भावना निहित थी। इस समय पं. दुर्गादत्त मिश्र, पं. गांगेय नरोत्तम शास्त्री जम्मू में ही नहीं अपितु राष्ट्रीय स्तर पर ख़्याति प्राप्त प्रतिष्ठित कवियों के रूप में जाने जाने लगे थे। भारतीय हिन्दी काव्य में 1940 के पास जब उत्तर-छायावादी (बच्चन, अंचल एवं नरेन्द्र शर्मा) काव्य का समय था तथा प्रगतिवाद और प्रयोगवाद नई राहों पर अग्रसर होने लगे थे। उस समय जम्मू-कश्मीर में साहित्य-सृजन की भूमि तैयार की जा रही थी। हिन्दी के प्रचार-प्रसार के लिए हिन्दी साहित्य सम्मेलन (1930), हिन्दी प्रचारिणी सभा जम्मू कार्यरत थी। सन् 1940 में हिन्दी साहित्य मण्डल की स्थापना हुई। प्रारम्भ में सर्वश्री धर्मचन्द प्रशान्त, श्यामलाल शर्मा, शंकर शर्मा 'पिपासु', नारायण मिश्र, रामनाथ शास्त्री, दीनूभाई पंत, गंगादत्त विनोद, गोपीनाथ कौशिक, सुशीला तुली, राज तुली, पातञ्जल देव, सुभाष भारद्वाज, वेदपाल दीप आदि मण्डल से जुड़े थे। मण्डल की गोष्ठियों में पढ़ी जाने वाली रचनाओं के संबंध में रामनाथ शास्त्री का कथन है कि - ''हिन्दी-साहित्य मण्डल जम्मू की गोष्ठियों में पढ़ी जाने वाली रचनाओं में श्रृंगार, यौवन, अनुराग विषय निषिद्ध थे। अतः समाज-सुधार, आचार संहिता विवेचन, देशानुराग, छायावाद आदि विषय चुनने का प्रोत्साहन दिया जाता था।'' ('दो चाँद'.... दो शब्द- प्रो. रामनाथ शास्त्री)। ये रचनाएँ लिखित रूप में उपलब्ध नहीं हैं अतः प्रो. सुभाष भारद्वाज का कथन उपयुक्त ही है कि ''1947 से पहले हिन्दी कवियों की कोई प्रकाशित काव्य कृति (छोटी-मोटी फुटकर रचनाओं को छोड़कर) उपलब्ध नहीं हैं अतः मूल्यांकन का आधार न होने के कारण

कुछ कहना विवादस्पद हैं।'' (प्रो. भारद्वाज-शीराजा अंक 62, पुष्ठ 7)। इन संस्थाओं ने हिन्दी कवियों को एक मंच प्रदान किया जो इन संस्थाओं की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि मानी जा सकती है। संस्थाओं के कारण ही एक कवि समुदाय तैयार हुआ था। सुश्री पुरुषार्थवती, दीनूभाई पंत, शकुंतला सेठ, श्रीमती कृष्णा गुप्ता, सुश्री सुशीला तुली, राज भल्ला, सत्यवती मलिक, दुर्गाप्रसाद काचरू, दीनानाथ नादिम, पृथ्वीनाथ 'मधुप', बंसीलाल सूरी, श्यामदत्त 'पराग', शंकर शर्मा 'पिपासु', रामकृष्ण शास्त्री 'अव्यय', मनसाराम 'चंचल' की रचनाएँ एक ओर छायावादी मानसिकता लिए हुए थीं तो दूसरी ओर प्रगतिशीलता की ओर उन्मुख हो रही थीं। पं. हरदत्त शर्मा 1948 तक जम्मू में काव्य सृजन करते रहे। पाँचवे दशक तक की कविता में भाषागत सरलता, छायावादी प्रकृति चित्रण, मादकता, गीतात्मकता, प्रगतिवाद की शोषण विरुद्ध चेतना और भारतेन्दु युगीन भाषा प्रेम, देशप्रेम एवं समाजसुधार (भारतेन्दुयुगीन प्रवृत्तियाँ) एकसाथ मिलता है। पाँचवे दशक में ही सुभाष भारद्वाज का उग्र एवं वामपंथी रूप राजनैतिक व सामाजिक विसंगतियों के विरुद्ध आक्रोश में दिखलाई पड़ा-

''ये भिखमंगों के भगवान/ये भूखों के भाग्य विधाता/देख रहे हैं आज तमाशा''

इन्होंने छन्दोबद्ध, मुक्त छन्द एवं छन्द मुक्त तीनों शैलियों में रचना की। जम्मू-कश्मीर राज्य में सुभाष भारद्वाज को नई कविता का सूत्रधार माना जा सकता है। 1960 तक आते-आते कविता के कथ्य और शिल्प में अभूतपूर्व परिवर्तन आया। कविता ने एक स्फूर्तिमय अंगड़ाई ली और राष्ट्रीय हिन्दी काव्यधारा के सम्मुख जा खड़ी हुई। राष्ट्रीय स्तर पर अब तक प्रयोगवाद के पश्चात् अकविता, सचतेन कविता, क्षणवादी कविता, ठोस कविता, यथार्थवादी, अतियथार्थवादी, नग्न कविता आदि कई वाद जन्म लेकर अंततः नई कविता में ही विलीन हो गए थे। अब राज्य की कविता राष्टीय स्तर के काव्य का अनुगमन न करते हुए सहगामिनी बन गई एवं तुकबन्दी,लय तथा छन्द को त्याग नई कविता की राह पर चलने लगी। शशिशेखर तोषखानी, रतन लाल शांत, डॉ. ओम गुप्त, पृथ्वीनाथ 'मधुप', रमेश मेहता, डॉ. अशोक जेरथ, ज्योतिश्वर पथिक, सुतीक्ष्ण कुमार 'आनंदम्', अग्निशेखर, निर्मल विनोद, उषा व्यास आदि कवि इस धारा में शामिल हुए। अपने प्रारंभिक रचना काल में लीक पर चलने वाले मोहन 'निराश' ने अंततः लीक़ छोड़ी और कहा ''अब मैं अन्य बिन्दुओं के साथ ऐसे धरातल पर आ चुका था, जब सारा वातावरण था पर मैं.नहीं था। अपने से अलग होकर खुद के विषय में सोचना अनिवार्य हो गया। नया भावबोध, नई चेतना, नवीन शिल्प ने जन्म लिया। अब ज़रूरी हो गया था भीड़ के साथ-साथ चलते हुए भीड़ से अलग होकर सोचना कि कौन-सी दिशा है इस मोड़ की।''- ''चीड़ों में ठहरी बयार।''

''शब्द बासी हो गए हैं। सब अर्थ बासी हो गए। हर बात बासी हो गई।''- (''एक अपरिचित आकाश'')। जन-कल्याण की भावना, देश-प्रेम, प्रणय व शृंगार, स्वच्छन्द प्रेम की आत्माभिव्यक्ति, प्रगतिशील चेतना, वैयक्तिक अनुभूतियां कविता का विषय रहे। इस समय भी कहीं भाव-बोध नया था तो शिल्प परंपरागत, कहीं भाव-बोध परंपरागत तो शिल्प नया।

अस्तित्ववादी चिंतन से प्रभावित कविताओं में औद्योगीकरण व मशीनीकरण के सम्मुख मानव-शक्ति लघु है, बौनी है परिणामस्वरूप अजनबीयत, अकेलापन, अलगाव, घुटन, संत्रास और कुण्ठा के भाव भी उत्पन्न हुए। डॉ. रतनलाल शांत ने कल्पना से यथार्थ के धरातल पर उतरने के लिए अपने काव्य संग्रह 'खोटी-किरणों' में स्पष्टतया कहा, ''कश्मीरी के कवि से अनायास ही आशा की जाती है कि प्रकृति-सौंदर्य को प्रकट करे। औरों की तो नहीं कह सकता लेकिन मैं इसे ऊब की हद तक जीते-जीते थका हूँ। आप से भी यही चाहता हूँ कि इस सौंदर्य को केवल पहाड़ों में न देखिए, घाटी में उतर कर इसे लोगों की वृत्ति में ढूँढिए तो जान पाएंगे कि अब केवल एक आवरण, एक लबादा और एक मुखौटा रह चुका है।'' उपमानों का परंपरागत अर्थ खोने लगा है- ''सूरज मेरे यहाँ से कभी नहीं गुज़रता/ अपनी अंधी कोठरी के झरोखों से/ मैने बाहर झाँक कर-/उषा के फूल सम्भालती मालिन से/ और तारों की बंद होती दुकानों से जितनी भी किरणें खरीदी थीं/ वे सब खोटी निकलीं/- ('खोटी किरणें'-'रतनलाल शांत')।

देश की चरमराती राजनैतिक व्यवस्था पर कटाक्ष करते हुए रमेश मेहता कहते हैं - ''व्यवस्था का स्वास्थ्य/ ठीक रहे/ इसीलिए/ खोज रहा है/ सारा देश/ एक गुलाब/- ('तिनका-तिनका घोंसला'-1987, पृ. 15)

स्थापित मान्यताओं के प्रति आक्रोश- ''आज़ाद घूमा करता है धर्म का बैल/ पुराने इसे पूजते हैं। छोटे इससे डरते हैं/ पुरानों का यह पूज्य है/ इसीलिए कि यह उन्हीं की तरह बूढ़ा है।'' ('सेतुओं की खोज' डॉ. ओम गुप्त)।

अस्तित्ववादी चिंतन की भाँति मनोविज्ञान की शाखा मनोविश्लेषणवाद का भी कवियों पर गहरा प्रभाव दिखलाई देता है। यांत्रिक वातावरण के कारण जब चारों ओर मशीनों की गड़गड़ाहट सुनाई देती है, शोर-भरे ऐसे व्यस्त समय में भी कवि को वह आँख दिखलाई दे जाती है जिसके सहारे ऊबाने वाली घड़ियाँ सरस होकर बीत जाती हैं तथा उसके अचेतन में कुलबुलाती अभुक्त कामनाएँ संतुष्ट होने लगती हैं- ''पसीने में पिघलती ज़िंदगी/अचानक फूल की पंखुरी बन जाती/ गर्म सांसों में गर्म सांसें मिलकर/ अजीब ठंडक बरसा देती हैं।''-('सेतुओं की खोज'- डॉ. ओम गुप्त पृष्ठ-16)

समाज के भय के कारण कवि प्रेयसी को रहस्य के आवरण में ही रखने के लिए इतना विवश हो जाता है कि वह उसके अस्तित्व को ही नकार देता है-''तुम्हारे विषय में/ यदि कोई पूछे/ तो क्या बताऊँ/ कुछ भी तो नहीं है बताने को/ पर/ ये लोग विश्वास नहीं करते/ कि तुम्हारा/ कभी अस्तित्व ही ना था।''- (प्रश्न तुमसे-आदर्श पियूष पृ.-14)

व्यक्तिगत अनुभूतियाँ समष्टिगत सत्य का उद्घाटन करती हैं- ''मेरा हँसना-हँसना नहीं है दोस्त/जिस तरह बच्चे का रोना रोना नहीं होता/ बच्चे के रोने से उसके बढ़ने का एहसास होता है/ मुझे मेरे हँसने से घटने का आभास होता है।'' ('आहत चीड़ें'-डॉ. अशोक जेरथ)

नई कविता में कवियों ने मिथक, बिम्ब व प्रतीक विधान की उपेक्षा नहीं की। छायावादी अतीन्द्रिय व लोकोत्तर बिम्बों के स्थान पर नई कविता में युगबोध दर्शाते यथार्थ को आधार बना कर जीवन के वैविध्य, जटिलता और वैचारिक संघर्ष के सशक्त बिम्बों की स्थापना की। बिम्ब के केन्द्र में यदि स्रष्टा है तो प्रतीक के केन्द्र में मानव समाज और उसके समृद्ध अनुभव रहते हैं। बिम्ब का धरातल नितांत वैयक्तिक होता है तथा प्रतीक के समक्ष समाज हमेशा रहता है। आत्मानुभूत रचनात्मकता के कारण बिंब में अनिश्चित अर्थों की अपार संभावनाएं अवस्थित रहती हैं जबकि प्रतीक का अर्थ निर्धारित करने वाला समाज है। प्रतीक पुरातन की नयी व्याख्या का न होकर नवीन जीवन सत्यों और मूल्यों की टकराहट भी अभिव्यक्त करते हैं। बिंब स्वयं अपना लक्ष्य न होकर किसी ओझल, अंतर्निहित रूप संवरण को पारदर्शी बनाने का माध्यम हैं, उसी तरह प्रतीक अपने कथ्य की प्रतीति कराते हैं। काव्य-बिम्ब की अतिवादी धारणा के कारण हुल्में ने माना कि काव्य-वस्तु जैसी कोई चीज़ नहीं होती। कविता केवल बिम्ब और रूपक का मामला है। टी. एस. इलियट का Objective corelative सिद्धान्त बिंब को अतिवाद से बचाने का प्रयास है जिसके अनुसार विशिष्ट अंतर्वेगी सूत्रों को खोजने के लिए वस्तुओं के समंजन (सेट), एक स्थिति (सिचुएशन) तथा घटनाओं की एक लड़ी कवि को चाहिए। वस्तुतः बिम्ब जहाँ कविता की शक्ति बढ़ाते हैं वहीं वे सार्थक उपादन हो सकते हैं। तीसरे सप्तक के कवि केदारनाथ सिंह से पहले बिंब विधान को किसी ने अपने वक्तव्य में प्रमुखता नहीं दी। केदारनाथ सिंह ने घोषित किया कि वे कविता में सबसे अधिक ध्यान बिंब पर देते हैं।

डॉ. रतन लाल शांत ''रात भर बर्फ गिरी/ जिसको निर्दय नल निर्वसन छोड़ गया/ उस दमयंती/ पेड़ को/ जाने किसका प्यार/ श्वेत वसन ओढ़ा गया/ पेड़ की वह छाया सनाथ थी/ चन्द्रवंशी नल वहाँ सुस्ताए थे/ लेकिन आज रात जो बर्फ गिरी/ अभागी तिमिर-वंशी, छायाएँ भी उभर गई।'' ('सृजन के क्षण'-पुष्ठ-11)

अथवा गुलमोहरों की उदास उंगलियाँ/सरुओं में/ धुंध के निशां हुईं/ कितनी संवेदनाएँ इस तरह/ गूंगे की आंख का/बयां हुईं।''-निर्मल विनोद

उषा व्यास का शब्द बिंब-

''सोनाली सांझ के/ गंध डूबे आमंत्रण में/खोजते रहे चुपचाप/लहके-लहके रोशनी बिंधे बादल/ झनकते नूपुरों के अर्थ/और शापित आकाश की रगों में/ टीसता रहा/ धुंआं-धुंआं दर्द।'' (शीराजा पूर्णांक-35)

भारती हिन्दी काव्य धारा की भांति ही राज्य के कवियों के काव्य में नई सोच, शिल्प के नए धरातलों की तलाश, नए अनुभव, स्थापित मान्यताओं के प्रति आक्रोश, चरमराती आस्थाओं के प्रति विक्षोभ, दोहरे मानदण्डों के प्रति झल्लाहट, राजनैतिक-सामाजिक-आर्थिक विसंगतियों पर कटाक्ष, दीन-दलितों के प्रति संवेदना आदि विषय रहे। सोवियत रूस के टूटने

से होने वाले सांस्कृतिक विस्फोट ने बुद्धिजीवियों को हिलाकर रख दिया, सोच में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अनेक परिवर्तन दिखाई दिए; जम्मू-कश्मीर राज्य के काव्य में इनकी चर्चा न के बराबर हुई हालांकि कुछ कवियों ने अंतर्राष्ट्रीय मुद्दों को अपनी रचना का विषय बनाया है।

जितेन्द्र 'उधमपुरी', डॉ. अशोक जेरथ, सत्यपाल श्रीवत्स, बलनील देवम, सुतीक्ष्णकुमार आनंदम्, क्षमा कौल, उपेन्द्र रैणा, हरिकृष्ण कौल, अनिलकुमार 'आज़ाद', चंचल डोगरा, सतीश बिमल, निदा नवाज़ आदि अनेक कवियों ने नई कविता की धारा को समृद्ध किया है।

पिछले पन्द्रह वर्षों से राज्य के काव्य जगत में एक नई काव्य प्रवृत्ति जन्मी है। 1990 में कश्मीर से एक समुदाय को बड़ी संख्या में निर्वासित होना पड़ा। विस्थापन के कारण, पीड़ा, आक्रोश, पराजय बोध, आन्तरिक टूटन आदि कई भावों ने लेखन में अपनी उपस्थिति दर्ज करवाई। विस्थापित कवियों ने विस्थापन का दर्द भोगा है, उस पीड़ा को सहा है तो राज्य के अन्य कवियों ने उसे महसूस किया है, महसूस करना कमतर नहीं आँका जा सकता, दर्द का जुड़ाव केवल महानुभूति नहीं होती, हर-पल उस दर्द से गुज़रना होता है, संवेनशील होता है रचनाकार।

'विस्थापित देह नहीं/सोच होती है/ और सोच के घाव/कभी नहीं भरते/ - ('ठहरा हुआ कोहरा'-जितेन्द्र उधमपुरी)

डॉ. रतन लाल शांत का 'कविता अभी भी' (1997), अग्निशेखर की मुझसे छीन ली गई मेरी नदी (1996) तथा कालवृक्ष की छाया में (2002), महाराज कृष्ण संतोषी के बर्फ पर नंगे पाँव (1993), यह समय कविता का नहीं (1996) तथा वितस्ता का तीसरा किनारा (2005) निर्वासन में रचे काव्य संग्रह हैं जिनमें विस्थापित की मानसिकता ने शिद्दत के साथ अभिव्यक्ति पाई है। आज साहित्य के भविष्य की चिंता उत्तर आधुनिकता एवं भूमंडलीकरण के कारण उत्पन्न चुनौतियों के परिप्रेक्ष्य में की जा रही है बीसवीं सदी के आखिरी दशक में फ्रेंडरिक जेमसन ने उत्तर-आधुनिकतावाद को पूँजीवाद के मौजूदा चरण का सांस्कृतिक तर्क करार दिया था। जेमसन का कहना था कि सहस्त्रावदी का भविष्य स्वप्न उलटकर वर्तमान के अतिरेकपूर्ण समारोह और पुनर्रचना में बदल जाता है। यानि भविष्य के बारे में हम जितना भी पूर्वानुमान लगाते हैं, उतना ही हमारे ऊपर एक अजीब-सा एहसास भारी होता चला जाता है। तरह-तरह के सामाजिक-आर्थिक-रानजीतिक विचार अनुपयोगी लगने लगते हैं यदि इसे तीसरी दुनिया के एक देश पर आरोपित किया जाए तो साफ़ हो जाता है कि उन्नीसवीं सदी ने आधुनिकता की जो विचारधाराएँ हमें थमायी थीं, वे गहरे संकट का शिकार हो चुकी हैं। राष्ट्रवाद और मार्क्सवाद दक्षिण एशिया की ज़मीन पर अपने महान आश्वासन पूरा करने में नाकाम साबित हुए हैं।' - (भारत का भूमंडलीकरण-सं. अभयकुमार दुबे

राष्ट्रवाद का कारागार और निराकार साइबर स्पेस की बगावत-रवि सुंदरम्-पृष्ठ 131-132)

प्रौद्योगिक विकास के कारण बाज़ारवाद जन्मा जिसके केन्द्र में उपभोक्ता है। साइबर स्पेस ने केवल विकास के ही नहीं बल्कि विकासवादी आधुनिकता के खिलाफ अनंत संभावनाओं के द्वार खोले हैं। तीसरी दुनिया तक आते-आते साइबर-स्पेस के मायने बदल जाते हैं। दुनिया उन्हें बहुत छोटी व अपनी मुट्ठी में लगने लगती है। इंटरनेट द्वारा तीसरी दुनिया की संस्कृतियों को अजूबे की तरह प्रस्तुत किया जाता है। भारत में साइबर-स्पेस के ज़रिए होने वाली अनुभूतियाँ एक ऐसी नवीनता का प्रतिनिधित्व करती हैं जिसका अर्थ अबूझ है। समय रहते साहित्यकार को इस पर गंभीरता से विचार करना होगा। भारतीय चैनलों द्वारा भी जिस तरह संस्कृति पर आक्रमण किया जा रहा है वह गंभीर चिंता का विषय है अपनी सांस्कृतिक विरासत को इस सूचना-प्रसारण तकनीकी के अंधड़ में सुरक्षित रखना हमारी ज़िम्मेदारी है।

संदर्भ पुस्तकें -

1. जम्मू-कश्मीर का स्वांतत्रयोत्तर साहित्य: एक विवेचन-डॉ. राजकुमार प्रथम संस्कारण-1999
2. जम्मू-कश्मीर के हिन्दी साहित्य का इतिहास- डॉ. अशोक जेरथ प्रथम संस्करण 2002
3. हमारा साहित्य - 1978
4. हमारा साहित्य - 1977
5. शीराज़ा - फरवरी - मार्च - 1984
6. 'प्रतिभा पुष्प' - 3, मधुरिमा - 1973
7. भारत का भूमंडलीकरण - संपादक अभय दूबे - 2003
8. कविता की तीसरी आँख - प्रभाकर श्रोत्रिय
9. जम्मू-कश्मीर के कवियों के काव्य-संग्रह।

ooo

राष्ट्रीय चेतना का जीवंत दस्तावेज : रंगभूमि

❒ डॉ. श्रवणकुमार मीणा*

प्रेमचंद हिन्दुस्तानी परिवेश में नव-सांस्कृतिक जागरण को जन्म देने वाले प्रगतिशील साहित्यकार माने जाते रहें हैं। उनका सम्पूर्ण लेखन युग एवं परिवेश तथा भारत की तत्कालीन सामाजिक-सांस्कृतिक स्थितियों का प्रतिबिम्ब दर्शाता है। उनका साहित्य दो महायुद्धों के मध्यकाल की स्थिति का वास्तविक चित्र प्रस्तुत करता है। सक्रांति कालीन विश्व परिदृश्य में हिन्दुस्तान की नई राष्ट्रीय और जनवादी चेतना के प्रतिनिधि साहित्यकार प्रेमचंद स्वयं स्वीकार करते हैं कि- ''साहित्यकार देशभक्ति और राजनीति के पीछे चलने वाली सच्चाई नहीं, बल्कि उसके आगे मशाल दिखाती हुई चलने वाली सच्चाई है।'' इस सच्चाई को तब तक मशाल बनकर रास्ता दिखाना होगा जब तक रंगभूमि में विजय नहीं मिलती, जब तक देश का कायाकल्प नहीं हो जाता, तब तक इस कर्मभूमि में गोदान और गवन के हीरो और रमानाथ का त्रस्त होना बन्द नहीं हो जाता, और जब तक हमारा देश एक नई तरह का सेवासदन, एक नई तरह का प्रेमाश्रम नहीं बन जाता। ज़ाहिर है हमारे देश में दरिद्रता उसके भूगोल या प्राकृतिक साधनों की कमी यहाँ के लोगों के चरित्र या क्षमता में अन्तर्निहीत किसी दोष से पैदा नहीं हुई थी और वहीं वह उन्नीसवीं शती के प्रारंभिक दो दशकों की देन थी। जमींदारों, भूस्वामियों, महाजनों, व्यापारियों, पूँजीपतियों और विदेशी सरकार के अधिकारियों द्वारा किसानों-मज़दूरों का शोषण तथा दरिद्रता, बीमारी और अर्द्ध भुखमरी की स्थिति पैदा हो जाने के कारण भारतीय कृषि व्यवस्था एवं उद्योगों की स्थिति में गतिरोध की स्थितियाँ जन्मी। पूँजीवाद ने सामाजिक हैसियत को धन का आश्रित बना दिया और लाभ कमाना सर्वाधिक चाहा जाने वाला सामाजिक काम हो गया। औद्योगिक विकास के नये-नये रास्ते खुले, लेकिन आधुनिक उद्योगों के विकास के साथ ही भारत में एक नए सामाजिक वर्ग (मज़दूर वर्ग) का जन्म हुआ, जो आर्थिक शोषण से ग्रस्त था। लेनिन ने लिखा कि ''एक ओर बड़े शहर बढ़ते जा रहे है विशाल गोदाम, विशाल महल और घर बनते जा रहे हैं। दूसरी तरफ करोड़ों आदमी गरीबी के कारण घुल-घुलकर मर रहे हैं। शहर और देहात दोनों में ऐसे लोगों की संख्या बढ़ रही है जिन्हें काम बिल्कुल नहीं मिलता गांवों में वे भूखे रहते हैं और शहरों में आवारों में शामिल हो जाते हैं।''[2]

आबादी का एक अन्य बड़ा सामाजिक गुट मध्य और निम्न मध्यवर्ग का था। इस दौर में राष्ट्रीय चेतना के महत् कार्य में सबसे महत्त्वपूर्ण भूमिका भारत के आधुनिक शिक्षित वर्ग ने निभायी। देश में यह पहला सामाजिक गुट था जिसने विदेशी सत्ता की सच्चाई को पहचाना और कई देशभक्तों ने राष्ट्रभक्ति भावना से प्रेरित होकर राष्ट्रीय आन्दोलन में हिस्सा लिया। यह

एसोशिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर (राज.) - 342005

वह समय है जब भारतीय राजनीति में गांधी जैसे युगपुरुष का आगमन हुआ था, जिसका प्रभाव जन-जन पर व्यापक रूप से पड़ा। गांधी के आगमन के साथ ही कांग्रेस ने एक निर्णायक लड़ाई छेड़ी। सन् 1920 ईस्वी से असहयोग का शुभारंभ हुआ और गांधी जी ने भारतीय जनता में व्याप्त भय-फौज का, पुलिस का, कारिन्दों का, अफसरों का, साहूकार का, भूखों मरने का, को दूर करने का प्रयास किया और कहा-"डरो मत"। इसी लहर में प्रेमचंद ने नौकरी छोड़ दी और असहयोग के सिपाही बने और यहीं से 'रंगभूमि' के समर में कूद पड़े।

उनका गांधी 'रंगभूमि' का 'सूरदास' है, जो निर्भीक, निडर, चट्टान की भांति अडिग रह कर संघर्ष करता है। प्रेमचंद ने असहयोग से अद्‌भुत साहसिकता ग्रहण की जो 'रंगभूमि' के पात्रों में दृष्टिगत होती है। 'रंगभूमि' की रचना के पूर्व भारतीय राजनीति और समाज व्यवस्था की जो स्थिति थी, वह किसी भी रूप से विकास की संभावनाओं को जन्म देने वाली नहीं थी। प्रेमचंद ने इन सबको गहराई से देखा और परखा। व्यवस्थावादियों, पूँजीपतियों, उद्योगपतियों की शोषित क्रूर मानसिकता से वे भली-भाँति परिचित थे। वे जानते थे कि अहिंसक क्रांति के रास्ते पर चलकर ही इनसे लड़ा जा सकता है। इसलिए वे 'रंगभूमि' में सूरदास जैसे अहिंसा के पुजारी को जो आखिरी दम तक संघर्ष के पथ पर डटा रहने वाला है, को लेकर पाठकों के समक्ष हाजिर होते हैं-प्रेमचंद का सूरदास आधुनिक औद्योगिकीकरण का प्रबल विरोधी है। वे तत्कालीन भारतीय परिवेश में शहरीकरण के दुष्परिणामों से बचने के उपाय तलाशते नजर आते हैं।

'रंगभूमि' की संरचना में सामाजिक स्तर पर दो वर्गों को हम बहुत स्पष्ट रूप से देख सकते हैं-एक वह वर्ग है जो निम्न-मध्यवर्ग से जुड़ा है, जो अनपढ़ है, जो खेती तो करता है पर सच्चे अर्थों में किसान नहीं है। जिसके जीवनयापन के अनेक अन्य छोटे-छोटे आधार हैं। जो अपनी परम्पराओं से, अपनी जड़ों से जुड़े हुए हैं तो दूसरा वर्ग वह है-जो पढ़ा लिखा एवं शिक्षित है, जिसे कहीं हम जमींदार के रूप में देख सकते हैं, कहीं पूँजीपति के रूप में, तो कहीं उद्योगपति के रूप में। प्रेमचंद सूरदास के द्वारा जॉनसेवक के विरोध में ज़मीन तैयार करते हैं। जो उद्योगपति विलासिता की सामग्री का उत्पादन कर अधिकाधित मुनाफा अर्जित करने में जुटे हैं, प्रेमचन्द उनका तथा साम्राज्यवादियों का विरोध करते रहे हैं। जिससे राष्ट्रवादियों में नई राष्ट्र चेतना ने जन्म लिया।

'रंगभूमि' की राष्ट्रीय चेतना के केन्द्र में कुँवर भरतसिंह, विनयसिंह, मिस सोफिया, प्रभु सेवक, इन्द्रदत और इन्दु हैं, जो जमींदार एवं शिक्षित वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं। राष्ट्रीय आन्दोलन की परिस्थितियों में सभी सामाजिक वर्गों को एकसाथ जोड़ते हुए प्रेमचन्द ने रंगभूमि में लाकर खड़ा कर दिया।

मि. जॉनसेवक के ताल्लुकात एकतरफ कुँवर भरतसिंह जैसे ताल्लुकदारों से है तो दूसरी तरफ क्लार्क जैसे हाकिमों से। वह दोनों के साथ मिलकर अपना काम निकालना चाहता है। कहने को वह कहता है- "हमारी जाति का उद्धार कला-कौशल और उद्योग की उन्नति में है।"[3] लेकिन वास्तव में वह लूट का जाल रचता है, जिसमें जमींदार और अंग्रेज भी शामिल

है। वह कहता है- "इस सिगरेट के कारखाने से कम-से-कम एक हज़ार आदमियों के जीवन की समस्या हल हो जाएगी और खेती के सिर से उतना बोझ टल जाएगा।"[4] लेकिन इस भाव के भीतर उनकी स्वार्थपरता अधिक झलकती है, परोपकार की भावना कम।

सूरदास अगर एक अत्यन्त सहृदय और परोपकारी मनुष्य है, तो जॉनसेवक कठोर और घोर स्वार्थी, निर्दयी व्यक्ति है, जो कानूनी विधानों, कूटनीति और धमकियों से अपना मतलब निकालता है और यह मार्ग उसे धर्म संगत प्रतीत होता है। जॉनसेवक किसी भी प्रश्न या तर्क को मानने के लिए तैयार नहीं है। उसका तो अपना स्वयं का तर्क है। वह कहता है- "यह संसार शांति भूमि नहीं, समरभूमि है। यहाँ वीरों और पुरुषार्थियों की विजय होती है। निर्बल और कायर मारे जाते हैं।"[5] इसीलिए वह राजा महेन्द्र को क्लार्क के खिलाफ खड़ा करता है। इस शीतयुद्ध में सूरदास की जमीन जॉनसेवक को मिल जाती है। फिर भी 'रंगभूमि' का सूरदास निराश नहीं होता। असहयोग आन्दोलन के दौरान प्रकट गांधी जी का अदभ्य साहस प्रेमचन्द ने सूरदास में कूट-कूट कर भरा है। वह कहता है- "सच्चे खिलाड़ी कभी रोते नहीं, बाजी-पर-बाजी हारते हैं, चोट-पर-चोट खाते हैं, धक्के-पर-धक्के सहते हैं, पर मैदान में डटे रहते हैं, हिम्मत उनका साथ नहीं छोड़ती, दिल पर मालिन्य के छींटे भी नहीं आते, खेल में रोना कैसा?"[6] कुँवर भरतसिंह, विनयसिंह, प्रभुसेवक, मिस सोफिया धर्म या जाति की परवाह किये बिना भारतीय होने में गर्व महसूस करते हैं, वे साम्राज्यवादियों का भांडा फोड़ना चाहते हैं, लेकिन उनके पास सशक्त संगठन, एकता एवं सुनियोजित तरीके नहीं है। फिर भी वे भारतप्रेमी और आशावादी हैं। उनका मानना है "आशा जड़ की ओर ले जाती है, निराशा चैतन्य की ओर, आशा आंखें बन्द कर देती है, निराशा आंखें खोल देती है, आशा सुलाने वाली थपकी है, निराशा जगाने वाला चाबुक।"[7] अर्थात् निराशावादी क्षणों में मनुष्य और अधिक सचेत एवं सक्रिय हो जाता है। 'रंगभूमि' के मार्फ़त।

प्रेमचंद ने दर्शा दिया कि लोगों में राष्ट्रीय चेतना का संचार हो गया था। गांधी जी के अहिंसा और सत्याग्रह का प्रभाव लोगों पर पड़ने लगा था। इसी संघर्ष में सूरदास बस्ती के हित साधन हेतू जॉनसेवक की गोली का निशाना बन गया। "आत्मबल, पशुबल का प्रतिकार नहीं कर सका"[8] लेकिन स्वदेश प्रेमियों का आत्मबल घटा नहीं, सूरदास को गोली लगने से जनता और अधिक संगठित हो गयी। विनयसिंह ने कहा, "अब भी हमारी पतित, दलित, पीड़ित जाति में इतना विलक्षण आत्मबल है कि एक निस्सहाय, अपंग, नेत्रहीन, भिखारी शक्तिसम्पन्न अधिकारियों का इतनी वीरता से सामना कर सका।" सूरदास स्वदेश प्रेमी था। वह अपनी पराजय कभी नहीं मानता। वह न्याय, अहिंसा और आत्मबल के सहारे विदेशी सता और उसके पोषकों से अन्तिम समय तक लड़ाई लड़ता है। अन्तिम समय में वह कहता है "हम खिलाड़ियों को मिला कर नहीं खेलते, तुम खेलने में निपुण हो, हम अनाड़ी हैं, हम हारे तो क्या, मैदान से भागे तो नहीं, रोये तो नहीं, धांधली तो नहीं की। फिर खेलेंगे ज़रा दम ले लेने दो, हार-हारकर तुम्हीं से खेलना सीखेंगें और एक-न-एक दिन हमारी जीत होगी, ज़रूर होगी।"[10] रंगभूमि का सूरदास पराजित हुआ, क्योंकि उस समय तक किसान, मज़दूर,

निम्न-मध्यवर्ग जैसी साम्राज्यविरोधी ताकतें संगठति नहीं हो पायीं थीं। उनमें कुशल नेतृत्व का अभाव था। लेकिन व्यक्तिगत पराजय के बावजूद सूरदास का संघर्ष व्यर्थ नहीं गया। उसके संघर्ष ने राष्ट्रप्रेमियों के आत्मसम्मान की रक्षा की। न्याय के पक्ष को प्रबल किया। राष्ट्रवादियों को संगठित किया। सूरदास का कथन, "फिर खेलेंगें, ज़रा! दम ले लेने दो"। अंग्रेज़ी राज के लिए चुनौती था, जो आगे चलकर राष्ट्रीय आन्दोलन के रूप में उभरा। रंगभूमि का सूरदास राष्ट्रीय चेतना का केन्द्र बिन्दु था। सच्चा सत्याग्रही एवं सत्याग्रही आन्दोलन का प्रणेता था। उसमें एक सत्याग्रही के सारे गुण विद्यमान थे-"एक सत्याग्रही गलत चीज़ के सामने कभी नहीं झुकता। वह सारी उत्तेजनाओं के बीच शांत रहता है। वह पाप का विरोध करेगा, लेकिन पापी से घृणा नहीं करेगा। सत्याग्रही भय, असत्य, घृणा, ईर्ष्या से दूर रहेगा।"[11]

हमारी राष्ट्रीय व्यवस्था में आजादी के पूर्व तक धन का प्राधान्य था, महाजनों और रईसों का राज्य था। जनसत्ता के अनुयायी शक्तिहीन थे। रंगभूमि में प्रेमचंद की लड़ाई इसी बड़े वर्ग के विरुद्ध सांमतविरोधी और साम्राज्यविरोधी लड़ाई थी। उन्होंने साम्राज्यवादी झूठ का भाण्डाफोड़ किया तथा अंग्रेज अधिकारियों के जमींदारों, सामन्तों, राजाओं के स्वार्थहित सम्बन्धों का पर्दाफाश किया। पाण्डेपुर के इस सत्याग्रह ने जनसत्तावादियों में एक नई संगठन शक्ति पैदा कर दी।

इस प्रकार 'रंगभूमि' तत्कालीन भारत के ग्रामीण और निम्न मध्यवर्ग की संघर्षपूर्ण गाथा सिद्ध होता है, जिसमें राजा, ताल्लुकेदार, पूँजीपति, जमींदार और अंग्रेजी शासक शोषक के रूप में मौजूद है और सर्वहारा वर्ग के प्रतिनिधी है पाण्डेपुर के आम जन। इसमें षड़यंत्र, धूर्तता, छल-कपट के साथ-ही-साथ सरलता, सहृदयता, त्याग अवं आदर्श की स्थितियाँ भी हैं।

निष्कर्षत: 'रंगभूमि' राष्टीय चेतना का जीवंत दस्तावेज़ है। 'संघर्ष का आईना है' जो मशाल बनकर भारतीयों का मार्गदर्शन करता है।

संदर्भ

1. मंगलसूत्र व अन्य रचनाएं – पृ. 359 प्रेमचंद
2. गांव के गरीबों से – पृ. 9 लेनिन
3. रंगभूमि – पृ. 48 प्रेमचंद
4. रंगभूमि – पृ. 48 प्रेमचंद
5. रंगभूमि – पृ. 178 प्रेमचंद
6. वही वही 118 वही
7. रंगभूमि – पृ. 147 प्रेमचंद
8. रंगभूमि – पृ. 448 प्रेमचंद
9. रंगभूमि – पृ. 449 प्रेमचंद
10. रंगभूमि – पृ. 468 प्रेमचंद
11. रंगभूमि – पृ. 468 प्रेमचंद

ooo

महादेवी का गद्य और कथा तत्व

❑ महेश दर्पण*

हिन्दी-कवियों ने गद्य से परहेज कम ही किया है। इनमें भी जिनका गद्य अलग ही छटा लिए है, उनमें महादेवी वर्मा प्रमुख हैं। उनके गद्य की विशेषता यह है कि वहां जीवन की यथार्थ कथा सामने आती है। इस कथात्मक गद्य में रेखाचित्रों के माध्यम से एक विधा ही विकसित होती चली गई।

'अतीत के चलचित्र' हों या 'स्मृति की रेखाएं', 'मेरा परिवार' हो या महादेवी का आत्मकथात्मक लेखन, 'पथ के साथी' के अद्‌भुत संस्मरण हों या उनके ऐतिहासिक भाषण, उनकी भाषा अपनी सरलता में गहरी उतरती चली जाती है और सहसा यह आभास भी गहराने लगता है कि यहां हम उस रचनाकार का एक अलग ही रूप देख रहे हैं।

यही कारण है कि उनके कुछ रेखाचित्रों को ही कुछ विद्वानों ने कहानी के समकक्ष मान उन्हें कहानियों के साथ संग्रहीत भी किया है। 'लछमा' जैसी ऐसी अनेक रचनाएं महादेवी के गद्य में मिल जाएंगी।

आइए, आपको रचनाकार की भाषा में इस पात्र से मिलवाएं- 'धुल-धुल कर धूमिल हो जाने वाले पुराने काले लहंगे को एक विचित्र प्रकार से खोंसे फटी मटमैली ओढ़नी को कई फेंट देकर कमर से लपेटे और दाहिने हाथ में एक बड़ा-सा हंसिया संभाले लछमा, नीचे पड़ी घास-पत्तियों के ढेर पर कूदकर खिलखिला उठी। कुछ पहाड़ी और कुछ हिन्दी की खिचड़ी में उसने कहा, 'हमारे लिए क्या डरते हो। हम क्या तुम्हारे जैसे आदमी हैं। हम तो हैं जानवर... जंगली जानवर। देखो हमारे हाथ-पांव। देखो हमारे काम।'

मुक्त हंसी से भरी यह पहाड़ी युवती रचनाकार को इतनी भली लगती है कि उसका कविमन गद्य की राह पकड़ लेता है। गद्य भी कैसा, खालिस कविता और जीवन के ताप से भरा- 'धूप से झुलसा हुआ मुख ऐसा जान पड़ता है जैसे किसी ने कच्चे सेब को आग की आंच पर पका लिया हो। सूखी-सूखी पलकों से तरल-तरल आंखें ऐसी लगती हैं मानो नीचे आंसुओं के अथाह जल में तैर रही हों और ऊपर हंसी की धूप से सूख गई हों।'

जीवन की जटिल लड़ाई लड़ती लछमा की जीवनकथा को सामने रखती यह रचना महादेवी के रचनाकार की दृष्टि और सहानुभूति के पक्ष को भी सामने रखती है। लगता है यह उनके मल्ला रामगढ़ प्रवास के दौरान ही लिखी गई। इसमें लछमा और महादेवी की क्रमशः बनती गई, आत्मीयता के तार तो खुलते ही हैं, चरित्र की दृढ़ता और निर्भीकता भी सामने आती है। यहां आप महादेवी की भाषा में लछमा की भाषा का प्रवेश भी देखेंगे। इन्हीं के मेल से यह अविस्मरणीय कथा बन सकी।

---

* *सी-3/51, सादतपुर, दिल्ली-94*

क्या महादेवी ने ऐसे चरित्रों का चयन सहज संस्मरणात्मक रेखाचित्रों के लिए किया था? शायद नहीं। वह समाज के मनोविज्ञान के साथ व्यक्ति के संघर्ष को तो सामने लाना ही चाहती थीं, कहीं यह भाव भी उनमें बराबर बना रहा कि मनुष्य चाहे तो प्रत्येक परिस्थिति में अपने 'स्व' को बनाए रख सकता है।

तभी तो वह कहती हैं- 'यह पर्वत कन्या, जितनी निडर है उतनी ही निश्छल। जिस प्रकार अपनी दराती के साथ वह अंधेरी-से-अंधेरी रात में भी मार्ग ढूंढ़ लेती है, उसी प्रकार अपने निश्चय के साथ वह घोर-से-घोर विरोध में भी अटल रह सकती है।'

'अतीत के चलचित्र' का प्रकाशन 1941 में हुआ तो 'स्मृति की रेखाएं' 1943 में सामने आई। महादेवी जी ने ठीक ही कहा है कि समय-समय पर जिन व्यक्तियों के संपर्क ने मेरे चिंतन को दिशा और संवेदन को गति दी है, इन संस्मरणों का श्रेय उन्हें मिलना चाहिए। इन्हें पढ़ते हुए हम महादेवी के जीवन में आए पात्रों से जैसे साक्षात मिल पाने का सुख उठाते हैं। रामा हो, साबिया हो, अलोपी हो या घीसा, बदलू हो या फिर लछमा, ये सब सामने आ खड़े होते हैं। दलित-विमर्श में साहित्य चिंतन कर रहे विचारकों को महादेवी के इस लेखन पर भी नज़र डालनी चाहिए।

यहां कथा के साथ स्केच और संस्मरण का मिला-जुला रूप एक नई विधा का विस्तार करता है। गुंगिया, भक्तिन और अनेक चरित्र हमारे साथ-साथ चलने लगते हैं।

संस्मरणों में समय और व्यक्ति की कथा भले ही हो, लेकिन महादेवी की मान्यता रही कि वह रेखाचित्र से एकदम अलग विधा है। उनके लिए यह मन की तीर्थयात्रा ही है। यह रूप देखना हो तो 1956 में प्रकाशित 'पथ के साथी' का पाठ किया जा सकता है। यहां महात्मा गांधी, रवीन्द्र नाथ, राजेन्द्र प्रसाद, जवाहर लाल, पुरुषोत्तम दास टंडन, निराला, मैथिलीशरण गुप्त, सुमित्रानंदन पंत, सुभद्रा कुमारी चौहान, जयशंकर प्रसाद और प्रेमचंद पर उनके अद्‌भुत संस्मरण हैं।

यहां ये चरित्र अपनी पूरी मानसिक बुनावट के साथ सहजता में खुलते नज़र आते हैं। चरित्र-कथा में स्मृतियों के अनेक रूप।

इस दृष्टि से महादेवी का आत्म-कथात्मक गद्य भी महत्त्वपूर्ण है। स्मृतिधन्य महादेवी ने जब अपने बालपन की स्मृतियों को कागज़ पर उतारा तो उनका समय, समाज और परिवेश अपने-आप खुलता चला गया।

देखिए तो एक झलक- 'बाबा कहते थे, इसको हम विदुषी बनाएंगे। मेरे संबंध में उनका विचार बहुत ऊंचा रहा। इसलिए 'पंचतंत्र' भी पढ़ा मैंने, संस्कृत भी पढ़ी। वे अवश्य चाहते थे कि मैं उर्दू-फारसी सीख लूं, लेकिन वह मेरे वश की कहां थी। मैंने जब एक दिन मौलवी साहब को देखा तो बस, दूसरे दिन मैं चारपाई के नीचे जा छिपी...।

कम लोग यह जानते होंगे कि महादेवी जी पद्य रात में और गद्य प्राय: दिन में लिखा करतीं थीं। यही कारण है कि पद्य उनके एकांत का सहयात्री बना जबकि गद्य जीवन का। हिन्दी के श्रेष्ठ गद्यकारों में एक जैनेन्द्र कुमार ने एक साक्षात्कार में शचीरानी गुर्टू से कहा था: 'पद्य में जैसे

उन्होंने (महादेवी) अपने को टटोला है और अंत में अपने को निवेदित किया है, उसके प्रति जो उनके अपने आत्म से भिन्न नहीं है। इस तरह घूम फिर कर उनका पद्य अधिकांश उन तक ही लौट आता है। उसमें जगत नहीं है। इसलिए वह काव्य कुछ इतना सूक्ष्म है कि अनुभूति तक में मुश्किल से आता है। यह सुविधा गद्य में तो नहीं है। गद्य इतना निरपेक्ष हो ही नहीं सकता है। इसलिए उनके गद्य में सहज भाव से हम-तुम की चर्चा हुई है। उसमें मानव पात्र हैं और वास्तविक परिस्थितियां हैं। केवल आत्मा वहां नहीं है। सहानुभूति की गति आवश्यक रूप से इतर के प्रति है। महादेवी जी के पद्य में वह इतर लगभग लुप्त है। इससे यह कहना कुछ हद तक ठीक ही है कि गद्य में इनकी सहानुभूति अपेक्षाकृत अधिक खिली है।

आप जरा उनके गद्य में 'गिल्लू' से मिलिए। वह आपको अकेला नज़र नहीं आएगा। वहां जीवंत प्रकृति विराजमान है: 'सोनजुही में आज एक पीली कली लगी है। इसे देख कर अनायास ही उस छोटे जीव का स्मरण हो आया, जो इस लता की सघन हरीतिमा में छिप कर बैठता था और फिर मेरे निकट पहुंचते ही कंधे पर कूद कर मुझे चौंका देता था। तब मुझे कली की खोज रहती थी, पर आज उस लघुप्राण की खोज है।'

अब आप इस चित्र के साथ बंधे-बंधे आगे बढ़ेंगे तो पाएंगे कि अचानक एक दिन महादेवी को दो कौवे गमले के चारों ओर चोंचों से छूआ-छऔवल जैसा खेल खेलते नज़र आ जाते हैं। रचनाकार की समूची करुणा और सहानुभूति लघुप्राण के प्रति उमड़ आती है। इसी के चलते फिर गिल्लू घर का सदस्य ही बन जाता है। यही लगाव जब और गाढ़ा होता है तो वह लेखिका के साथ ही बैठ खाने लगता है। अस्वस्थता में अपने नन्हें-नन्हें पंजों से लेखिका के बालों को सहलाने लगता।

महादेवी ने जिस आत्मीयता से गिल्लू के साथ का चित्रण किया है, वह किसी कथा-प्रसंग से कम नहीं है। गिल्लू के विछोह में भरी रचनाकार उसे स्मरण करती रहीं। जिस सोनजुही की लता के नीचे गिल्लू को समाधि दी गई, वही उसे सबसे प्रिय थी। बाद में उसी में खिलते फूलों को देख उन्हें संतोष मिलता है तो यह स्वाभाविक भी है क्योंकि उसमें वह अपने प्रिय गिल्लू का होना भी अनुभव करती हैं।

'मैं और मेरा परिवेश' में महादेवी ने कहा है- 'कभी-कभी अवचेतन में बहुत से संस्कार रहते हैं। वे चेतना पर छा जाते हैं। तब लिखना आवश्यक हो जाता है और बहुत कुछ तो ऐसा लिखा जाता है जो दिन-भर के कर्त्तव्य के उपरांत रात में लिखा है। लेकिन उसमें अंधेरा नहीं, आपको दीपक की बाती मिलेगी। दीपक मुझे बहुत प्रिय लगता है। उसकी छोटी-सी लौ भी सघन अंधकार से लड़ सकती है।'

यहां महादेवी का गद्य उनके पद्य के रहस्य खोलता नज़र आता है।

'गिल्लू' की तरह उनकी कृति 'मेरा परिवार' में आप सोना हिरनी, दुर्मुख खरगोश, नीलकंठ, गौरा, नीलू कुत्ता, निक्की रोज़ी और रानी जैसे चरित्रों से मिल सकते हैं। पशु-पक्षियों को महादेवी अपना संगी मानती थीं। उन्हें यह दुख था कि मनुष्य ने उनसे यह प्राथमिकता अनायास ही छीन ली है।

इसके प्रमाण महादेवी जी पर आए अनेक संस्मरणों में निलते हैं। 'मेरी मौसी महादेवी' में प्रीति अदावल ने ऐसे कई सूत्र खोले हैं। जो बताते हैं कि इस आकर्षक कथात्मक गद्य के पीछे पशु-पक्षियों से महादेवी का कितना गहरा लगाव छिपा था- 'हम सब घर के बाहर खेल रहे थे कि फाटक पर मौसी का तांगा दिखा। उसके घोड़े और तांगे वाले को हम खूब पहचानते थे।' मौसी आई, 'मौसी आई' कहते हम सब दौड़े और मौसी जब उतरीं तो भगतिन (उनकी बुढ़िया नौकरानी) एक बड़े से झाबे को ढके हुए उतरी, भीतर से चूं-चूं। हमारी उत्सुकता की सीमा नहीं, पिटारे में क्या है? घर के भीतर ढकना उठाया गया और कई जोड़ी उत्सुक आंखों ने देखे पाँच छोटे-छोटे झबरे सुंदर पिल्ले। मौसी की पेकिनीज फ्लोरा की प्रथम संतानें।... पशुओं का विशेषकर कुत्तों का यह प्रेम मेरे नाना की देन है मौसी और छोटे मामा को, फिर मुझे और नन्हें भतीजों को।... साइरस बुढ़ापे में मौसी के ही पास आ गया था- बिल्कुल ही अशक्त और अंधा होकर। एक दिन वह खो गया तो मौसी ने अखबारों में उसे खोजने वाले के लिए इनाम घोषित किया था और उसका पूरा विवरण दिया था। मिल तो वह दूसरे दिन ही गया था किंतु लोग हंसे भी कि अंधे-बूढ़े कुत्ते के लिए ऐसी परेशानी। मौसी के मन की बात सामान्य लोग समझ ही नहीं सकते।... कई बार म्यूनिसपैलिटी की कुत्ता पकड़ने वाली गाड़ी से उन्होंने रुपए देकर कुत्ते छुड़ाए और पाले हैं... पशु प्रेम के बाद मेरे और मौसी के बीच तादाम्य की दूसरी कड़ी है प्रकृति प्रेम।

महादेवी जी के यहां बिल्ली, तोते, खरगोश, कुत्ते, गाय.... सभी तो थे। उनके साथ के, रचनाकार के व्यवहार ने ही यह प्रवाहमय गद्य दिया है। अपने साथ के लोगों पर भी उनकी कलम पूरी आत्मीयता से चली है। क्रास्थवेट गर्ल्स कालेज में पांचवें दर्जे की छात्रा की स्मृतियों को महादेवी ने बहुत बाद में कागज़ पर उतारा तो काल-कथा ही कागज़ पर उतर आई। ये वे दिन थे जब सुभद्रा कुमारी चौहान उनसे दो वर्ष सीनियर थीं।

कैसे थे ये दिन और इनका मिलाप? महादेवी लिखती हैं-'मैं 1917 में यहां आई थी। इसके उपरांत गांधी जी का सत्याग्रह आरंभ हो गया। आनंद भवन स्वतंत्रता के संघर्ष का केंद्र हो गया। जहां-तहां हिन्दी का प्रचार भी चलता था। कवि-सम्मेलन होते थे तो क्रास्टवेट से मैडम हमको साथ लेकर जाती थीं। हम कविता सुनाते थे। कभी हरिऔध जी अध्यक्ष होते थे, कभी श्रीधर पाठक होते थे, कभी रत्नाकर जी होते थे, कभी कोई होता था। कब हमारा नाम पुकारा जाए बेचैनी से सुनते रहते थे। मुझको प्रायः पुरस्कार मिलता था। सौ से कम पदक नहीं मिले होंगे। उसमें .... एक कविता पर मुझे चांदी का एक कटोरा मिला, बड़ा नक्काशीदार, सुंदर। उस दिन सुभद्रा नहीं गई थीं।.... उसी बीच आनंद भवन में बापू आए। हम लोग तब अपने जेब खर्च में से हमेशा एक-एक, दो-दो आने देश के लिए बचाते थे और जब बापू आते थे तो वह पैसा उन्हें दे देते थे। उस दिन जब बापू के पास मैं गई तो अपना कटोरा भी लेती गई। मैंने कहा-'कविता सुनाने पर मुझको यह कटोरा मिला है। कहने लगे-'अच्छा, दिखा मुझ को।' मैंने कटोरा उनकी ओर बढ़ा दिया तो उसे हाथ में लेकर बोले- 'तू देती है इसे?' अब मैं क्या कहती? मैंने दे दिया और लौट आई।...

महादेवी ने इस प्रसंग को अपने इस दुख के साथ दर्ज किया है संस्मरण में। दुख यह था कि बापू पूछते तो कि वह कविता क्या है? पर कविता सुनाने को तो उन्होंने कहा ही नहीं। दुख यह भी था कि उसी कटोरे में सुभद्रा जी को खीर खिलाने का वादा वह कर चुकी थीं। लेकिन कटोरा तो चला गया।

यही संस्मरण-कथा बताती है कि 'स्त्री दर्पण' नाम की पत्रिका में इन दोनों की शुरुआती रचनाएं छपीं। व्यक्ति से समय और समाज तक महादेवी इतनी सहजता से पहुंचती हैं कि खबर ही नहीं होती। इस काल-कथा में यह कला देखी जा सकती है। - 'उस समय यह देखा मैंने कि साम्प्रदायिकता नहीं थी। जो अवध की लड़कियाँ थीं, वे आपस में अवधी में बोलती थीं, बुंदेलखंड की आती थीं, वे बुंदेली में बोलती थीं। कोई अंतर नहीं था और हम हिन्दी पढ़ते थे। उर्दू भी हमको पढ़ाई जाती थी, परंतु आपस में हम अपनी भाषा में ही बोलती थीं। यह बहुत बड़ी बात थी। हम एक मेस में खाते थे, एक प्रार्थना में खड़े होते थे, कोई विवाद नहीं होता था।' उस वातावरण पर बाद में लिखते वक़्त महादेवी को महसूस हुआ कि जैसे वह एक सपना था, 'शायद यह सपना सत्य हो जाता तो भारत की कथा कुछ और होती।'

उनकी रचना का यह कथा-तत्व और संवेदना कुछ अलग रूप में उनके ललित निबंधों- 'क्षणदा' में देखा जा सकता है। भारत जैसे देश में उन जैसे रचनाकार के होने का एक विशेष अर्थ था क्योंकि वह यह सलाहियत दे सकती थीं कि... 'मैंने देखा कि विभिन्न मत रखने पर भी व्यक्ति कैसे एक-दूसरे के निकट आ जाता है। फिर मंदिर हो, मस्जिद हो, गिरजा हो, मुझे कहीं कुछ अंतर नहीं जान पड़ता।... हर आस्था को मैं महत्त्व देती हूं। इसका कारण बचपन का संस्कार है।' इस रूप में अपने मानस के निर्माण में संस्कार-कथा भी कही है महादेवी जी ने। उनकी कथा के चित्र पढ़ने वाले के मस्तिष्क में घूम जाते हैं। तभी तो महाप्राण निराला ने लिखा था -

'दिए व्यंग्य के उत्तर रचनाओं से रचकर
विदूषी रही विदूषक के समक्ष तुम तत्पर...
यामा, 'दीपशिखा' के विशिखों के ज्यों मारे
अपल चित्र हो गए लोग, 'चलचित्र' तुम्हारे
चला रहे हैं सहज, 'श्रृंखला की कड़ियों' से
सजी, रंगी लेखनी तूलिका की छड़ियों से।'

आज, जब समूचे साहित्य के मूल्यांकन-पुनर्मूल्यांकन की बात की जा रही है, महादेवी के गद्य और उसके कथातत्व को भी गंभीरतापूर्वक समझाने व विश्लेषित करने की आवश्यकता है।

०००

औचित्यवाद की प्रासंगिकता

❐ डॉ. वाहिद नसरू

उचितं प्राहुराचार्याः सदृशं किल यस्य यत्।
उचितस्य च यो भाव तदौचित्यं प्रचक्षते।।

जिस के जो अनुरूप होता है वह उचित का सम्बन्ध होने पर वही औचित्य होता है अर्थात् उचित का भाव ही औचित्य कहलाता है। वैसे ही काव्यों में भी जो जिसके अनुरूप होता है वह उचित माना जाता है तथा उसका सम्बन्ध होने पर औचित्य होता है। यह औचित्य काव्य का सूक्ष्मतम अवयव वर्ण, पद आदि से लेकर प्रबन्ध तक परम अपेक्षित होता है क्योंकि जिस अंश में इसका अभाव होता है, वहीं पर सहृदय को आह्लाद में व्याघात उत्पन्न हो जाता है इसलिए आचार्य क्षेमेन्द्र ने औचित्य को काव्य सर्वस्व माना है कि रस, अलंकार, रीति, ध्वनि वक्रोक्ति आदि काव्य में चमत्कारक होने के कारण जो विभिन्न मतों में आत्म-स्थानीय माने गये हैं उनका औचित्यपूर्ण विधान होता है। अतः औचित्य ही काव्य में परम तत्त्व है जो रस, अलंकार आदि को चमत्कारक बनाता है। अतः औचित्य ही काव्य में प्रधान है। काव्य जीवित औचित्य के अभाव में रस, अलंकार और गुण केवल व्यर्थ ही नहीं होते अपितु हास्यपद भी हो जाते हैं।

इस प्रकार से औचित्य तत्त्व की समीक्षा अलंकारवादी, रसवादी तथा ध्वनिवादी आदि आचार्यों ने की है।

भरतमुनि जो कि रसवादी आचार्य हैं इन्होंने भी "औचित्य" शब्द का प्रयोग न करते हुए भी इस के सम्बन्ध में अनेक स्थलों पर पर्याप्त संकेत किये हैं-"जिस पात्र के लिए जैसी भूमिका एवं चेष्टा उचित हो, वह वैसी होनी चाहिये।"

यादृश्यो यस्य कर्तव्या विन्यासे भूमिकास्ततः।।
या यस्य सदृशी चेष्टा हयुत्तमाधममध्यमा ।। *नाट्यशास्त्र।-6/35*

इसी प्रकार उदभट् ने भी यद्यपि "औचित्य" शब्द का प्रयोग नहीं किया है किन्तु ऊर्जिस्व अलंकार के लक्षण में प्रयुक्त "अनौचित्य" शब्द प्रकारान्तर से तथ्य का सूचक है कि उन के युग में औचित्य तत्त्व किसी रूप में पनप रहा था।

इसी प्रकार दण्डी ने भी दोष के निवारण तथा गुण तत्त्व के सम्बन्ध में बहुविध सामग्री प्रस्तुत की है-

जैसे-कवि कौशल के बल पर देशगत, कालगत आदि विरोध दोष तत्त्व को छोड़कर गुण बन जाते हैं।

दूसरे शब्दों में यदि कोई कवि अपने काव्य में इन दोषों का औचित्य देखते हुए इनका प्रयोग जान-बूझकर करता है, तो वहाँ यह दोष गुण बन जाता है।

''क्षेमेन्द्र का औचित्य विचार चर्चा'' को आचार्य मम्मट ने कहीं उदधृत नहीं किया है। सम्भवत: आचार्य मम्मट के समय तक औचित्य सम्प्रदाय ने विशेष, ख़्याति नहीं प्राप्त की होगी किन्तु औचित्य की ओर मम्मट का ध्यान अवश्य गया था और उन्होंने रस दोष विवेचन के प्रसंग में ''ध्वन्यालोक'' की ''औचित्यादृते'' उक्ति को उद्धत भी किया है। इसी प्रकार रूद्रट ने भी ''औचित्य'' और ''अनौचित्य'' शब्द का प्रयोग करते हुए औचित्य की महत्ता का स्पष्ट संकेत किया है। उनके कथनानुसार-वैदर्भी और पांचाली वृत्तियों का प्रयोग करूण, भयानक और अदभुत् रसों में तथा लाटीय और गौडीय या रौद्र रस में प्रयोग औचित्यपूर्वक करना चाहिये। रूद्रट के अनुसार ग्राम्य दोष वहीं माना जाता है जहाँ कुल, जाति, विद्या, वित, आयु, स्थान और पात्र आदि में अनौचित्य होता है। इन्होंने भी औचित्य का पूरी तरह प्रयोग नहीं किया है। इन सभी के पश्चात् भी आनन्दवर्धन ने अलंकार, गुण, संघटना, प्रबन्ध, वृत्ति तथा भाषा के प्रयोग में औचित्य पर प्रकाश डालते हुए क्षेमेन्द्र के लिए इस तत्त्व को प्रतिपादित करने का द्वार खोल दिया। इन्होंने भी औचित्य को कोई अलग तत्त्व नही माना है। इनके उपरान्त महिमभटट् ने भी अपने ग्रन्थ ''व्यक्ति विवेक'' में काव्य दोष को अनौचित्य नाम दिया है। जो रस-स्वाद की प्रतीति में विघ्न उपस्थित करता है उसे अनौचित्य कहते हैं। काव्य में अनौचित्य अन्तरंग और बहिरंग दो प्रकार से होता है। अन्तरंग अर्थात् रस-विषयक और बहिरंग अर्थात् शब्द विषयक। अन्तरंग प्रधान होता है और बहिरंग गौण। इस प्रकार से देखा जाता है कि इन्होंने भी औचित्य का प्रयोग तो अवश्य ही किया है परन्तु उस पर कोई विशेष बल नहीं दिया है। इन के उपरान्त क्षेमेन्द्र का नाम आता है। इनका कहना है कि सर्वथा युक्ति-युक्त एवं लोक-व्यवहार पर आश्रित है ''चन्द्रहार'' शोभादायक आभूषण तभी होता है जब उचित रूप से ग्रीवा में निबद्ध होता है। वही 'चन्द्रहार' उत्मांग पर लटकाने से ललना को उपहासस्पद बना देता है।

शौर्येन प्रणते रिपौ करूणतया नायन्तिके हास्यताम्।
औचित्येन बिना रूचिं प्रतनुते नालकृतिर्नो गुणाः ।।

दया निश्चित ही बहुत अच्छा गुण है, परन्तु किसी आततायी के प्रति दया भाव अनुचित हो जाता है और दयावान की अपटुता को प्रकाशित करता है। इस से स्पष्ट है कि गुण विधान अलंकार आदि का औचित्य पूर्ण विधान ही उनमें गुणत्व, अलंकारत्व आदि लाता है। यही स्थिति है कि काव्य में गुण, अलंकार आदि के साथ औचित्य होता है। अत: औचित्य ही एक ऐसा तत्त्व है जो रस में रसत्व, गुण में गुणत्व, अलंकार में अलंकारत्व आदि का विधान करता है इसलिए औचित्य ही काव्य में सर्वोपरि तत्त्व है। आनन्दवर्धन ने भी अनौचित्य को रसभंग का कारण मानकर औचित्य को ही रस का परम रहस्य बतलाया है।

आचार्य क्षेमेन्द्र के अनुसार जैसे मनुष्य के अस्तित्व के लिये शरीर और आत्मा दोनों ही आवश्यक हैं और पंचमहाभूतों से निर्मित शरीर तथा प्राण शक्ति की स्थिति के लिए आत्मा

परमावश्यक है। उसी प्रकार काव्य शरीर रस प्राण शक्ति के समान है और औचित्य आत्मा के समान है। औचित्य के अस्तित्त्व पर ही रस स्थिर रह सकता है। अतः काव्य का स्थिर अनिश्वर आत्मा औचित्य ही है और रस प्राण है। प्राण और आत्मा में जिस प्रकार आत्मा का स्थान उच्चतर है उसी प्रकार रस और औचित्य में औचित्य का स्थान महत्तर है।

विश्वनाथ तथा पण्डितराज जगन्नाथ ने भी औचित्य की समीक्षा की है उन्होंने औचित्य का प्रयोग किया है परन्तु औचित्य को कोई अलग-सा तत्त्व नहीं माना है उन्होंने रस पर ही अधिक बल दिया है और उस में स्वतः ही औचित्य आता है परन्तु औचित्य का अलग से प्रयोग नहीं किया है।

औचित्य का महत्त्व

क्या लोक व्यवहार में और क्या कला काव्य व्यापार में सर्वत्र औचित्य का महत्त्व असंदिग्ध है। लोक में परस्पर आचरण में औचित्य और मर्यादा नहीं है तो सम्बन्ध बिगड़ जाते हैं, वातावरण दूषित हो जाता है रंग में भंग पड़ जाता है। जीवन में जो व्यक्ति उचित व्यवहार करना नहीं जानता वह अनाड़ी कहलाता है। सामाजिक विधि निषेध का पालन करते हुए जो अपना उचित आचरण रखता है, वही सामज में समादृत होता है। सभी प्रकार के धर्म-कर्म नीति-अनीति पाप-पुण्य औचित्य पर ही आधारित हैं।

संसार में सौन्दर्य की कल्पना भी औचित्य पर आधारित है। एक सुन्दर आकृति केवल इसलिए सुन्दर नहीं कि वह गौर वर्ण है या एक फूल इसलिए ही सुन्दर नहीं कहा जा सकता है कि उस की पंखुड़ियां कोमल हैं और उस का रंग तेज है, अपितु वह इसलिए सुन्दर होता है कि उसके अंग-प्रत्यंग की रचना औचित्यपूर्ण होती है। उसके सभी अंगों में एक सामजस्य होता है। यह अंगों का उचित अनुबन्धन ही उसके सौन्दर्य का आधार है। नैन-नक्श अच्छा होने से क्या तात्पर्य है, यही न कि नाक, कान और होंठ आदि मुखाकृति के सभी भाग उचित गठन के कारण ही सांवली आकृति भी सुन्दर प्रतीत होती है और इसके अभाव में गौर वर्ण मुख भी भद्दा नज़र आता है। अतः सौन्दर्य का औचित्य से अनिवार्य सम्बन्ध है।

इसी प्रकार काव्य के सभी अंगों एवं तत्त्वों में औचित्य आवश्यक है। काव्य का गुण सौन्दर्य है और वह कोई निरपेक्ष, असंपृक्त पूर्वसिद्ध वस्तु नहीं, अपितु सापेक्ष और योजना सिद्ध वस्तु है। इसी सापेक्ष योजना का आधार औचित्य है। काव्य-सम्बन्धी सभी विधि-निषेध औचित्य के आधार पर ही बनते हैं। वस्तुतः औचित्य एक मर्यादा है। किसी भी अंग का एक सीमा मर्यादा से अधिक या कम प्रयोग अथवा किसी भी प्रकार की कम मर्यादा से बाहर प्रयोग अनुचित हो जाता है। औचित्य वह विवेक है, वह दृष्टि है जो वस्तुओं काव्यांगो के उचित-अनुचित प्रयोग का परिज्ञान कराता है। आलोचक वही सफल हो सकता है जिस के पास औचित्य विवेक हो, जो यह नहीं जान सकता है कि क्या उचित है, क्या अनुचित है, वह न तो कलाकार या कवि ही बन सकता है, न ही कलापारखी एक चित्रकार चित्र बनाता है

पर यदि उस के पास औचित्य-बुद्धि नहीं, यदि उसे रंग योजना औचित्य का ही ज्ञान नहीं तो वह सफल चित्रकार कैसे बन सकता है।

सारांश यह है कि औचित्य हमारे क्रिया-कलाप का, हमारे दैनिक जीवन का अविभाज्य अंग है, इस के बिना कोई लोक-व्यवहार नहीं सधता है। औचित्य-बुद्धि मानव की सहज प्रवृत्ति है, उस के स्वभाव का नैसर्गिक लक्षण है। यह मानव की आदिम प्रवृत्ति है। इसके बिना कला-निर्मित सम्भव नहीं।

वस्तुत: ''औचित्य'' शब्द और ''औचित्य तत्त्व'' इतना विशाल है कि उस की परिधि भावात्मक और अभावात्मक में सभी कुछ समाविष्ट हो जाता है। ''उचित'' और ''अनुचित'' के अन्दर क्या कुछ समाविष्ट नहीं होता। अनेक दृष्टियों से ''औचित्य'' का अपना महत्त्व है। एक प्रमुख व व्यापक महत्त्वपूर्ण काव्य-शास्त्रीय सिद्धान्त के रूप में इसकी प्रतिष्ठा सर्वविदित है ही, अन्य अनेक शास्त्रों में भी वह एक आवश्यक कसौटी और एक उपयोगी तत्त्व के रूप में पर्याप्त प्रतिष्ठित है।

औचित्य के व्यापक महत्त्व पर एम. एम. कुप्पी स्वामी शास्त्री के एक रेखांकन को डॉ. राघवन ने प्रस्तुत किया है जिसे यहाँ प्रस्तुत करना प्रासंगिक ही होगा। औचित्य का व्यापक महत्त्व इस से स्वत: स्पष्ट हो जाता है।

औचितीमनुधावन्ति सर्वेध्वनिरसोन्या: ।
गुणालंकृतिरीतिनां न्याश्चानजुवाङ्मया: ।।
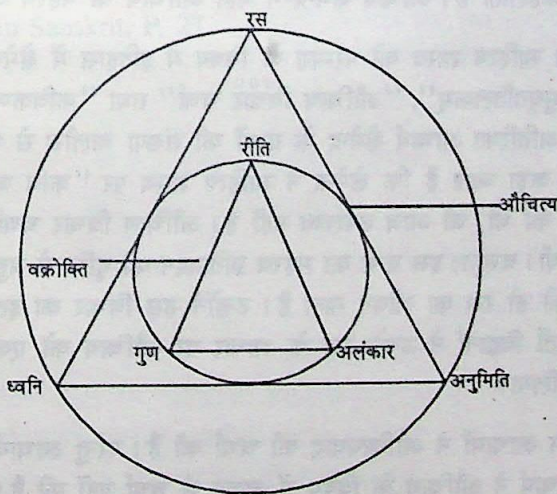
आचार्य क्षेमेन्द्र ने औचित्य की महिमा का गान किया है। इसी प्रसंग पर भरत के

अदेशजो निवेषस्तु न शोभां जनीयष्यति।
मेखलोरसिबन्धे च हास्यायैवोपजायते।।

इस कथन के आधार पर निम्नलिखित सूक्ति की सृष्टि की गई है।

कण्ठे मेखलया नितम्बफलके तारेण-हारेण वा,
पाणौ नूपुर बन्धनेन चरणे केयूर-पाशेन वा,
शौर्येण प्रणते रिपौ करूणतया नायन्ति के हास्यताम्
औचित्येन बिना रूचिं प्रतनुते नालंकृतिर्नो गुणाः ।।

कण्ठ में मेखला बांधने से या नितम्ब पर लम्बे हार पहनने से अथवा हाथ में नूपुर बांधने से या पैर में केयूर रखने से कौन व्यक्ति लोक में हंसी का पात्र नहीं बनता। नतानन पर शूरता और शत्रु पर करुणा दिखलाने वाला व्यक्ति क्या अपने को उपहास्पद नहीं कर लेता है, तथ्य की बात यह है कि औचित्य के बिना न तो अलंकार ही रूचिकर प्रतीत होते हैं और न गुण। भूषण-तत्त्व का प्रधान आश्रय या औचित्य ही है।

इसके पश्चात् औचित्य का लक्षण इस प्रकार किया गया है-

उचितं प्राहुराचार्याः सदृशं किल यस्य यत् ।
उचितस्य च यो भावस्तदौचित्यं प्रचक्षते ।।

जो वस्तु जिस के अनुरूप होती है, उसे हम उचित कहते हैं और उचित का भाव ही ''औचित्य'' कहलाता है। आचार्य क्षेमेन्द्र ने यही औचित्य के महत्त्व के विषय में कहा है।

संस्कृत साहित्य शास्त्र की परम्परा के विषय में इतिहास में क्षेमेन्द्र का महत्त्व उन के तीन ग्रन्थों ''सुवृततिलकम्'', ''औचित्य विचार चर्चा'' तथा ''कविकण्ठाभरणम्'' के कारण ही है। इनके अतिरिक्त आचार्य क्षेमेन्द्र के ग्रन्थों की संख्या चालीस से भी अधिक अनुमानित की जाती है। कहा जाता है कि क्षेमेन्द्र ने साहित्य शास्त्र पर ''कवि कर्णिका'' नामक ग्रन्थ की भी रचना की थी, जो आज उपलब्ध नहीं है। औचित्य विचार चर्चा की वृत्ति भी क्षेमेन्द्र ने ही लिखी थी। वस्तुतः इस ग्रन्थ का महत्त्व प्रतिपादन की दृष्टि से बहुत अधिक है। क्षेमेन्द्र ने औचित्य को ही रस का जीवन माना है। उन्होंने उस विचार का इतना मण्डन किया कि बहुत से परवर्ती विद्वानों ने उनके मत के आधार पर औचित्य को एक काव्य सम्प्रदाय ही स्वीकार क़र लिया।

विभिन्न आचार्यों ने औचित्यवाद की चर्चा की है। परन्तु आचार्य क्षेमेन्द्र को छोड़कर किसी भी आचार्य ने औचित्य के विषय में अलग से चर्चा नहीं की है। आचार्य आनन्दवर्धन ने आचार्य क्षेमेन्द्र के लिए औचित्य तत्त्व का द्वार खोल या अर्थात् आनन्दवर्धन ने ही औचित्य

का खुलकर विवेचन करके क्षेमेन्द्र का यह कार्य आसान कर दिया था जिसके कारण ही क्षेमेन्द्र का औचित्य सम्प्रदाय एक प्रस्थान के रूप में प्रतिष्ठित हो सका है।

विभिन्न आचार्यों ने विभिन्न प्रकार से औचित्य की विवेचना की है। अवश्य ही औचित्यवाद का महत्त्व भी है क्योंकि समाज में नीति, धर्म, आचरण आदि औचित्य पर ही आधारित है, औचित्य के बिना तो कोई लोक-व्यवहार ही नहीं सधता। इस औचित्य का तो अनेक दृष्टियों से अपना महत्त्व है। आचार्य क्षेमेन्द्र ने भी औचित्य को ही अपनाकर इस के महत्त्व पर दृष्टि डाली है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि औचित्य पर ही साहित्य शास्त्र आधारित हैं क्योंकि औचित्य ही काव्य का सर्वस्व है। इस प्रकार औचित्य का विशेष महत्त्व है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. अनौचित्यप्रवृत्तानां काम क्रेक्षादिकारणात्।

   भावनां च रसानां च बन्ध ऊर्जास्व कश्यते। का. सा. स. 4 वर्ग

2. का. आ., 3.179

3. अनियेषामपि दोषाणामित्यौचित्यान्मनीषिभि :।

   अदोषता च गुणता ज्ञेया चानुभयात्मता ।। सा. द. - पेज - 32

4. M.M. Kuppu Swami Shastri : Highways and By ways of Literacy. Criticism in Sanskrit, P. 27

०००

समीक्षा

कविता के कैनवास पर समय का कोलॉज

☐ वंदना शर्मा*

कविता का सच, समय के सच से सगुम्फित होता है। कवि कविता के माध्यम से अपने समय के हर बारीक स्पंदन को पकड़ना चाहता है, दर्ज करना चाहता है। ऐसे समय में जब मनुष्यता झुलसने के लिए आग के हवाले कर दी गई हो, कविता के बचे रहने के मायने और अधिक बढ़ जाते हैं। दरअसल कोई भी संवेदनशील कवि अपनी कविता के माध्यम से समय में हस्तक्षेप ही तो करता है। मनोज शर्मा के **'बीता लौटता है'** काव्य-संग्रह की कविताएँ इसका प्रमाण हैं। कवि ने अपने आँखों देखे सच और अनुभूत संवेदनओं को केवल शब्द नहीं वाणी भी दी है। इन कविताओं में विचार, भावलोक की सघनता में प्रत्यक्ष होता है और संवेदनाओं की संश्लिष्ट स्थितियों में विचार धीमे से अप्रत्यक्ष भी हो जाता है। कहने का आशय यह है कि 'बीता लौटता है' की कविताओं में विचार का विस्फोट और संवेदना का बारीक स्पंदन मिलकर, समय को, कविता की परिभाषा में रचते और गढ़ते हैं।

हमारा समय जो समाज और समुदायों के विस्थापनों, भावनाओं के व्यापार और प्रतिभाओं की कुंठाओं को झेल रहा है, कवि पहले उससे संवाद साधना चाहता है। परछाइयों का कद बढ़ने से पहले, ताकि कवि, पाठक और समय की संवेदना एकरस हो सके, कवि अपनी व्यंग्योक्तियों में आज़ादी के अर्थ पर सवालिया निशान लगाता है। आज़ादी कुछ इस तरह आई कि भौंचक खड़े हम जीने का सलीका भी भूल गए। संबंधों का सारा गणित गड़बड़ा गया और मनुष्य, मनुष्य के कंधों पर सवार हो भावनाओं का व्यापार करने लगा। कवि मार्मिक व्यंग्य करता है कि चोर की पहरेदारी में सब ठीक-ठीक है.......

> **खुली आजादी मिली हुई है**
> **और सभी धंधा करते हैं।**

इसी तरह 'परिवर्तन' और 'अब की' कविताओं में कवि पुनः समय के अभिशाप पर उँगली रखता है :-

> **पता नहीं कैसे**
> **हो गए हैं इतने अभिशप्त**
> **कि जब कोई परिचित खुलकर हँसता है साथ-साथ**
> **उससे खतरा होने लगता है।**

हमारी पीढ़ी की प्रतिरोधी शक्तियों के नपुसंक हो जाने की विवशता भी कवि बयान करता है :-

* *अध्यक्ष, हिंदी विभाग, एस.एन.डी.टी. आर्ट्स एवं कॉमर्स कॉलेज, चर्चगेट, मुंबई - 20*

कुछ हो सकता
पर
ससुरा गुस्सा भी तो
गुस्से की तरह नहीं आता आजकल।

और यह भी कि :

बौना अहसास चीख तक निगल जाता है।

इन तमाम विपरीत परिस्थितियों के बीच कवि निराश नहीं है। '**दियासिलाई की आखिरी तीली की संभावना**' को बचाए रखने की इच्छा व आशा को तो जिलाए ही रखना है। 'पहाड़ पर लालटेन जलाने' की इच्छा भी कवि की आस्थावान चेतना का परिणाम है। विष्णु खरे, मंगलेश डबराल और मनोज शर्मा की कविताओं में 'पहाड़ पर लालटेन', एक दृश्य बिम्ब बनकर उभरा है, जो निश्चित ही समकालीन कविता में समय की चुनौतियों के समक्ष सीधी मुठभेड़ की इच्छा में तनकर खड़े रहने की इच्छा ही है।

कवि की आस्था उसे बंद दरवाज़ों के अंदर बैठकर भी धुंधलाए शीशे से बाहर के आम, शाख के बीचों-बीच फैले छत्ते और शीशे पर आकर बैठी मधुमक्खियों को देखने की फुरसत और हौसला देती है। सूरज से घड़ियों का रिश्ता टूटने की चिंता कवि को है लेकिन फिर भी कवि चिड़ियों को आसमान, हवा को हौसले का पंख देना चाहता है और कुंओं में रस घोलना चाहता है। कवि की आस्था ही तो है कि आतंक के साए में जब तक आत्मसुरक्षा में, जाने-अनजाने बंदूक का सहारा ढूंढ़ते हों, कवि बंदूक की असहायता का ज़िक्र करता है :-

रूकी घड़ियों के परेशान हालात में
पाया मैंने
कितना छोटा है बंदूक का कद
कभी नहीं चल पाएगी
किसी ओर की बंदूक
अपने आप।

समय की क्रूरता और मानवीय विवशता के प्रसंगों और क्षणों को उकेरते हुए 'प्रेम' की कोमल संवेदना के भी कई भावपरक चित्र कविताओं में सांस लेते हैं। प्रेम की निजता का जन-जन तक विस्तार कवि की प्रेमानुभूति को उदात्त बनाता है :

जिस राह से गुज़रो तुम
पिघल जाएं वहां के लोगों की
तमाम, दुःख तकलीफें
कि जैसे मैं लौटा

तुम्हारी छुअन से
लौटी कुदरत
लौटे ऐसे ही जन-जन
अपने व्यवहार में
अपने आकार में

संशय के झुटपुटे में भी प्रेम-संवेदना प्रार्थना-सी बची रहती है। कवि 'प्रेम' को अच्छी कविता की तरह सहेजना ही नहीं चाहता उसे कंठस्थ कर लेना चाहता है। इन कविताओं में 'प्रेम' मांसल नहीं है और कविता शब्द-भर नहीं। इसलिए वे स्मृतियों या सपनों में आकार ही नहीं लेते, कवि के भीतर महकते हैं। हर मंज़र से गुज़रते हैं, जहाँ से कवि गुज़र रहा है। यहाँ प्रेम की निजता, सामीप्य और तदाकार में परिणत होकर अधिक रससिक्त और सारगर्भित हो जाती है। कविता लोक से संपृक्त होकर समय के साथ बहने लगती है। प्रेम को कवि ने रूप, रंग, आकार के स्थान पर ध्वनि और अहसास में पकड़ने की कोशिश की है। उदाहरण द्रष्टव्य हैं :-

* **अंगुलियों में नगदार अंगूठियाँ, करधनी, पाँवों में बिछिया**
  प्रत्येक अंग पर कील दी गई थी प्रेमिका ....

* **समय मेरी देह पर जब तना था, ठंडी कुल्हाड़ी सा**
  तभी वह कूकी
  मेरे जीवन में ....

* **तुम्हीं-तुम**
  स्मृतियों में भी गुनगुनाती
  ठसक भरी आती हो
  और गिरती हो जब
  छन्न सी मुझमें
  दूसरी आवाज़ें बंद हो जाती हैं

कविताएँ वहाँ ज़्यादा अर्थपूर्ण हो गई हैं जहाँ कवि की अनुभूति को शब्दों और प्रयोगों ने सघन बनाया है। जैसे शब्दों के अखरोट तोड़ना, मंगल ने तो यूं भी पहन रखी हैं तांत्रिक अंगूठियाँ, शिकार होने के बावजूद खड़ा होना, बंदूक का कद, चेहरे का सुच्चापन, फिरन की गंध, पुल पर कुत्ते का रोना आदि ...... शब्दों का विशिष्ट प्रयोग, उसमें 'लोक' की गंध, कविता को परिवेशगत संदर्भ देकर अधिक जीवंत बनाते हैं।

सर्वनामों की जगह नामों का प्रयोग धूमिल से ही केंद्र में आ गया था। इन कविताओं में भी नामों का प्रयोग सांकेतिक है, कवि सब की नहीं हर एक की बात करना चाहता है। वह भीड़ को नहीं, व्यक्ति से संबोधित होना चाहता है। भीड़ का तंत्र तो बहरा हो चुका है। हंसू पगला, मुंडू, बूढ़ा गूजर, गोपाला मोची, बचना दिहाड़ीदार, रमालो, नंदू संथाल.... कविता में चरित्रों का नियोजन है।

एक और बात जो मुझे इन कविताओं में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण दिखाई देती है वह यह कि कवि संघर्ष का आह्वान करता है लेकिन जिन औज़ारों का इस्तेमाल करता है वे अजीबोगरीब, लेकिन सोद्देश्य हैं, साभिप्राय। जैसे–चींटी, अंधेरा, स्वर, बस्ते, बच्चे, पुस्तक, पुस्तकालय और कविता।

चींटी, जिसमें मिट्टी खोदने की अदम्य जिजीविषा है। अंधेरा, जो समूची देह को आँख बना लेता है। स्वर, जो सबद का पर्याय है। बस्ते, जिनमें सामर्थ्य है नया संसार रचने का। बच्चे, जिनके मासूम सवाल हमारी कुंद हो चली बुद्धि को झकझोर देते हैं। पुस्तकें, जिनमें स्पंदन है। पुस्तकालय, जहाँ पहलवाननुमा चौकीदारों की पहरेदारी में भी कबूतर गुटर-गूं कर लेते हैं और कविता, जो मोरपंख बनकर 'हरेक' का पसीना पोंछ सकती है।

कवि को जो लड़ाई लड़नी है वह अस्त्र-शस्त्र की तो है नहीं (यद्यपि दिखाई वैसी ही देती है), समय के बेवफ़ा और क्रूर हो जाने की है, तो औज़ार भी नए ही चाहिए।

पहाड़, समुद्र और महानगर के कई बिम्ब कवि ने खड़े किए हैं। समुद्र के विस्तार में स्मृतियों के पहाड़ खड़े करके कवि समय के अंतराल को पाटना चाहता है। कवि महानगर में अकेला नहीं आया है। पहाड़, पहाड़ की बर्फ, 'तवी' के पानी का गीला अहसास, पहाड़ों का सन्नाटा, सगे-रिश्ते, बहनें ...... पूरा गाँव-घर साथ आया है। इन कविताओं को पढ़कर लगता है कि विस्थापित एक अकेला आदमी, परिवार या विशिष्ट समाज नहीं होता। रिश्ते, गाँव, संस्कार, परिवेश और उसके साथ पूरी संस्कृति विस्थापित होती है।

'बीता लौटता है' की कविताएँ कविता के कैनवॉस पर समय का कोलॉज रचती हैं। जिनमें हैं, अखबार की कतरनें, दोस्तों की यादें, पहाड़ की बर्फ, बच्चों के मासूम सवाल, प्रेम की तरलता, संस्कृति का विस्थापन, तवी का पानी, समुद्र, नंदू संथाल का संघर्ष, रमोला की लाज, गोपाले मोची की गाली, सर्वहार का दुःख, आतंक का साया, सत्ता के दाँव-पेच, आम आदमी की विवशता और कवि की आस्था। समय के इस कोलॉज मे कवि निदा फाज़ली के इन शब्दों की तरह ही महसूस करना चाहता है :

मैं जिस तरह से
सोचता था
बस्ती उसी तरह बदल रही है ....

पुस्तक का नाम : बीता लौटता है (कविता संग्रह)
लेखक : मनोज शर्मा
प्रकाशक : आधार प्रकाशन प्रा० लि० सेक्टर 16, पंचकूला-134113 (हरियाणा)
मूल्य : रु० 125/-

०००

नंगे पाँव ज़िंदगी, मेरी दृष्टि में

❑ जसबीर चावला

पुस्तक का नाम	:	नंगे पाँव जिन्दगी
विधा	:	कविता संग्रह
कवियित्री	:	अनिला सिंह चाड़क
प्रकाशक	:	जीवन प्रभात प्रकाशन, मुम्बई/पुणे-400046 फोन 26716587
प्रकाशन वर्ष	:	2007,
मूल्य : 150 रूपये,	:	पृष्ठ संख्या 131

131 पृष्ठों में 68 कवितायें यानि औसतन हर कविता के दो पन्ने। जैसे हर इंसान के दो पांव। किसी के पाँव तले कालीन है, यह अलग बात है, किसी ने पंजाबी जुत्ती पटियालाशाही पहनी है, कोई हज़ारों रुपयों की हज़ारों जूतियाँ रखता है, उसे शौक है चीफ मिनीस्ट्री का, कोई खडाऊँ चटकाता फिरता है, किसी के पास पाँव ढकने का पैसा नहीं है। और कोई नंगे पाँव ही जिन्दगी के सफर तय करता आगे बढ़ता जा रहा है, जैसे नंगे पाँव चढ़ते जाना है पहाड़ पर, मंदिर तक। अनिला सिंह चाड़क भी इसी किस्म की इंसान हैं। ऐसा नहीं कि उनके पास किसी चीज का अभाव है, बल्कि इस विश्वास के साथ वे निकली हैं कि वहाँ पैदल ही जाना है। और उसका आर्शीवाद पाना है, तो नंगे पाँव ही चल। किसी महात्मा के दर्शन करने जाना हो तो नंगे पाँव जाना। यही बाबा बुड्ढा जी ने कहा था गुरु हरगोविन्द सिंह की माता से, माता गंगा जी से, ''नंगे पाँव आना; पैदल, रथ पर सवार होकर नहीं, शान और शौकत का मुजाहिरा करते हुए नहीं।'' यही बात है जिन्दगी की भी.... कविता की भी। अनिला ने इसलिये ही बिल्कुल सच-सच कह डाला है ''अभिव्यक्ति'' में, क्यूं नंगे पाँव चली जिन्दगी ? ''मृगतृष्णा'' जिन्दगी की महज कविता नहीं थी जो छठी कक्षा में उभरी थी। वह एक इल्हाम था, आने वाली जिन्दगी का पूर्वाभास था। प्रत्यारोपित पौधे की पीड़ा थी जो कभी व्यंग्य में प्रकट हुई, कभी कविता में। पर युवा कवियित्री के निश्छल मन में सच के लिये तड़प थी। यही तड़प इंसान को नंगे पाँव चलने को बाध्य करती है- नहीं तो भगवान् बुद्ध अपने वस्त्र और जूते सारथी को न सौंपते, नंगे पाँव वन में प्रवेश न करते कि हाथ काँटों में लहू-लुहान हो जायेंगे। यादों के सहारे, कल्पनाओं पर सवार होकर साहित्यकारा चाड़क भी पिता के लिये लिखी कविता में याद करती हैं-''आशीर्वाद देती उष्ण हथेलियों की मन पर तपन/सूँघ रही हैं स्मृतियाँ/हृदय में गमकती स्नेह की खुशबू।''

व्यंग्य लेखन, नाटक, बच्चों का स्कूल... साहित्य साधना के साथ-साथ संगठन का बहुआयामी कौशल है उनके पास। पर मन से कविता ही फूटती है- ''एक कविता तुम्हारे

---

* *123/1, सेक्टर-55 चंडीगढ़-160055*

नाम'' (पृष्ठ 108 पर) ''बस यूँ ही चाहता है मन/तुम्हारे ख्वाबों के पेड़ पर शबनमी ओस-सी झर जाऊँ......।'' पर नारी सुलभ यह सहज समर्पण कब तक ? जब कवि अपने समाज का घिनौना चेहरा देखता है तो उसका संवेदनशील मन टीसने लगता है, ऐसे में कवियित्री चाड़क का व्यंग्य मुखर हो उठता है-

> ''इतने हो गये हम कामयाब
> कि बाबरी मस्जिद में
> राम के लौटने की प्रसन्नता में
> जलाये हमने खून के दीये
> और फूलों की जगह
> लाशों को बिछा दिया।''
> (हम होंगे कामयाब, पृ. 48)

तब कवयित्री अपने व्यंग्यात्मक कौशल को हथियार की तरह सान देते लगती है-

एक बार व्यंग्य-कथन जागृत हुआ तो पूरी कविता में सारे रंग उन्हीं कूट उक्तियों के भरे गये- ''बच्चों की संवदेनाओं को नोच कर/उगायीं हमने वेदनायें... मासूमों की खाल से बनाये/हमने आदमी के मुखौटे और उन्हें भेड़ियों को पहना दिया''। वे क्रुद्ध हो उठती हैं व्यवस्था के खिलाफ; जैसे कि महाकलियुग के सभ्य वनमानुष, उनकी कविता ''चिंतन'' में (पृष्ठ 62) वे बिल्कुल फट पड़ती है। सोचती हूँ अक्सर मैं महाकलियुग के कौन से/नियमों के अंतर्गत/वह पुरुषोत्तम कहलाते हैं। (पृ. 63)। वे आगाह करती हैं ''नाखून'' में (पृ. 64)

> ''हैरान हूँ कि उगा लिये हैं। उसने भी हथेलियों में नाखून ....
> दुःख सिर्फ इस बात का है कि वह किसी दूसरे के नहीं
> अपने ही नाखूनों द्वारा मारा जायेगा।''

और यह भविष्यवाणी तरह-तरह से वैज्ञानिकों द्वारा भी की जा रही है-ग्लोबल वार्मिंग। पर मजबूरी है कि रोजमर्रा में खपा इंसान, तीसरी-चौथी दुनिया का इंसान, बेखबर है साजिशों से (पृ. 67) ''बाहर हवा बेधड़क चल रही है/खिड़कियों के भीतर की यातनाओं से बेखबर/कीलों की जिस्मों के साथ साजिशों से बेखबर।'' अनिला ने जिस प्रतीकात्मक तरीके से आज मानव की त्रासदी को समझाया है वह बेजोड़ है- ''रिश्ता है पुराना कीलों और जिस्मों का/तोड़ा नहीं जा सकता/इसलिये बंद खिड़कियों को खोला नहीं जा सकता।''

कुछ इसी तरह की लाचारी ''बिडम्बना'' (पृष्ठ 59), ''जाने कब तक'' (पृष्ठ 58) में उभरती है। और यह लाचारी इंसान के साथ ''एक हादसा'' भी बन सकती है जैसे वह जंगल की लकड़ी हो! ध्यान से देखें तो ऐसे अनगिनत चेहरे मिल जायेंगे जो इस व्यवस्था का शिकार हैं। खासकर स्त्री-वर्ग। आज पूरे भारतवर्ष में नारी-विमर्श और नारी चेतना पर चर्चायें हो रही हैं। कवियित्री ने नारी की व्यथा को ''चुनरिया'' कविता में बड़ी सुंदरता से

व्यक्त किया है। ''न होती चुनरिया तो और भी नंगा होता/औरतों का इतिहास/जिसे ढकने के अनथक प्रयास में/चिन्दी-चिन्दी हो तार-तार बिखरती रही हैं चुनरियां'' (पृ. 57)

अनिला अपनी कविताओं के माध्यम से खोज रही हैं उस पापी को जो जिम्मेदार है– ''कितने निरीह हो तुम मेरे देश/पाखण्डी की गोद में/बैठे भीख मांगते बच्चे सरीखे।'' (व्यथा पृ. 54)। 36 नम्बर कविता से शुरूकर आखिरी 52 न. कविता वाला खण्ड कश्मीर को समर्पित है। कहना न होगा कि इस खण्ड में कश्मीर समस्या के उभरने से लेकर अब तक के खूनी मंज़र को झेलते व तन के दर्द को सीने में समेटे, सहमे इंसान का चित्र बनना स्वाभाविक है। ''कलम'', ''खून और आदमी'', ''तुम चुप क्यों हो मेरे देवता'', ''चेहरा'', ''रवायतें'', ''एक प्रश्न'', ''समर्पण'', एक गांव, ''हवायें अब भी छूती हैं मन'' आदि कवितायें कुल मिलाकर बिगड़े हुए हालात ज़ाहिर करती हैं। कवियित्री अनिला यहाँ सबसे अलग हैं वह है उनका बेबाक होकर कहना-''तड़पता हुआ आदमी और कुचला हुआ कुत्ता..'', ''आदमी का खून फब्वारे की मानिंद'' व उस खून की बूँद-सी जो अभी-अभी गिरी है। किसी मासूम के कत्ल किये जिस्म से/झील के दामन में/चिनारों की पत्तियों पर/तुम्हारे सफ़ेद संगमरमरी पांवों पर तुम चुप क्यों हो मेरे देवता ?''। विस्थापित आदमी अपने दर्द को व्यंग्य में डुबोकर यह प्रश्न देवता के सिवाय और किससे करे ? इसलिये अनिला अपने साथी को ''भूल जाओ तुम'' की राय देती है– ''गर रखोगे याद तो टीस उठेगी/तुम्हारी समस्त शिरायें/टीस उठेंगी वक़्त की दहलीज/जहाँ तुम्हारे पूर्वजों के पाँवों के निशान हैं।'' (पृ. 113)

भाव शून्य हो जाने की राय कितनी प्रैक्टिकल है यह ''गूंथता रहा वक़्त'' शीर्षक में समझ आ जाता है– ''गूँथता रहा वक़्त जिन्दगी को आटे की तरह/सिकती रही जिन्दगी रोटी की तृष्णा के चूल्हें में/पड़ी रही किसी शिकारी की प्लेट में।'' इसलिये अगर ''मनुहार'' भी होगी तो उसमें भी व्यंग्य होगा-''शूल तुम चुभना शूल बनकर ही/फूल बनकर नहीं/आग तुम जलाना सिर्फ आग बनकर/फाग बनकर नहीं .....। तलवार तुम वार करना सिर्फ तलवार बनकर/शीतल धार बन कर नहीं .../दाँत तुम सिर्फ दाँत बनकर ही गड़ना/चुम्बन बन कर नहीं''। यही है वास्तव में जगत की विडंबना, इंसान जब इस तरह की स्थितियों को समाज में देखता है, महसूसता है तो चाहे इस धोखे-फरेब को सह तो लेता है पर टीसता ह्रदय ''नेह नीर-सा/फिर चुपचाप गालों पर टपक जाता है टप से'' (पृ०116) पर कविता ''नेह नीर'' अनिला इसी भावना को ''पार'' कविता में दुहराती है- ''मत गड़ाओ मुस्कुराहटों के पैने नाखून/मत घोंपो आलिंगनों के धारदार चाकू। (पृ०106) उनकी ज़िन्दगी में इस बात का शिद्दत से एहसास है कि ''खूबसूरत काँच के बर्तन में/तैरने के भ्रम में आज जाना कि/मारने के लिये जरूरी नहीं औजार/प्रेम से भी किया जाता है वार'' (वही कविता)। चाहे कितना भी ''मति-भ्रम'' हो (पृ०102), इंसान का मन जीने को हो आता है (पृ० 104-105) और यही वह कथ्य है जिसे अनिला अपनी कविताओं में भी मरने नहीं देती। उन्हें यह उम्मीद है ''फिर सुबह होगी'' (पृ०94) जब हरी दूब की फुनगी पर। लहू की बूंदों के बदले/शबनम की बूँदें थिरकेंगी। अनिला का यह प्रयास सराहनीय है।

०००

अंधेरे से चुराई गई कविताएं : एक जायज़ा

☐ कुलविन्दर मीत

अंधेरे से चुराई गई कविताएं वास्तव में बदूँक के साए में लिखी गई कविताएं हैं। यहां भय है, संत्रास है और अकेलेपन से जूझता हुआ वर्तमान है। पिछले सोलह-सत्रह वर्षों में कश्मीर ने वह सभी कुछ झेला है जो एक स्वप्न (डरावना) सा है। परन्तु यहां का कवि उसी शक्ति से हाथों में कलम थामे है जितनी शक्ति से अन्धेरे के मसीहा अपने हाथों में बन्दूक थामे है। उनकी बन्दूक की आवाज़ तेज़ हुई तो इधर धड़ाधड़ विद्रोही कलम ने कागजों में अपना तीखापन उतारना शुरू कर दिया। कमाल की बात यह है कि कविताएं चाहे किसी भी भाषा में लिखी गई परन्तु उनकी आत्मा एक ही थी। विद्रोह का भाव समाज ही था। इसलिए सभी कविताओं को पढ़ते हुए लगता है कि इसका कवि भी एक ही है।

''अंधेरे से चुराई गई कविताएं'' संग्रह हमारे हाथों में है। इसका स्वागत इसलिए भी आवश्यक हो जाता है क्योंकि यह अपने वक़्त का मूल्यांकन करने का प्रयास है। समय के चेहरे पर से नकाब हटाने की कोशिश है। एक विद्रोह है जो शब्दों द्वारा बोल रहा है। इस पुस्तक का हमारे बीच होना अपने समय को दस्तक देना है। और इसका श्रेय इस पुस्तक के अनुवादक एवम् संकलन कर्त्ता सतीश विमल को जाता है। सतीश विमल एक सुप्रसिद्ध नाम है। हिन्दी की मशाल को मजबूती से थामे हुए वह कश्मीर एवम् समस्त भारत के बीच सेतू बने हुए हैं। कश्मीरी, उर्दू, अंग्रेज़ी भाषाओं को हिन्दी में अनूदित कर वे कश्मीर की रचनाधार्मिता को हमारे मस्तिष्क में अंकित कर रहे हैं। सतीश विमल अपनी धरती मां के आँचल में बैठकर उसे ढाढ़स बंधा रहे हैं कि ''हे मां एक दिन फिर से तुम्हारी गोद हरी होगी, फिर से पक्षी चहचहाएंगे मैं यही तुम्हारे पास हूं, आतंक और भय को झेलता हुआ अपना कर्त्तव्य पूरा करता हुआ।'' न जाने ये ज़िद है कि हिम्मत की दीवार जो सशक्त खड़ी है और तूफान का तमाम खतरा अपनी छाती पर झेल रही है। इस कविता संग्रह में उन्हीं कविताओं का चयन किया गया है जो बंदूक संस्कृति के विरोध में हैं। अत: आतंकवाद के विरुद्ध हैं। और कमाल यह है कि अगर कविताओं के अनुक्रम में न लिखा गया होता कि अमूक कविताएं अमूक भाषा की हैं उदाहरणतया कश्मीरी, उर्दू, हिन्दी, अंग्रेज़ी आदि तो यूँ लगता की ये सभी हिन्दी की कविताएं ही है। इतना कुशल अनुवाद है यह सतीश विमल ही कर सका है। तमाम कवि चाहे वह किसी भी भाषा के हों हमें एक से प्रतीत हुए हैं उदाहरण देखिए -

हमने इतिहास के पन्नों का
बटवारा किया ....

हमने अपने जीवन बाँटे
छोटे-छोटे टुकड़ों में

यह कश्मीरी भाषा की डॉ 'दरख्शां अंदराबी' द्वारा लिखित कविता है, इस कविता में व्यक्ति का अपनी लालसाओं के साथ अर्न्तद्वन्द्व दर्शाया गया है। एक और कविता जो हिन्दी की है देखिए :-

''मेरी संतान के सर
भरी उपज की भांति
काट दिए गए।''

निदा नवाज़ की यह पंक्तियां भी मनुष्य का दुख और कश्मीर का रक्तरंजित हृदय सामने लाती हैं। चाहे कोई भी कविता हो किसी भी भाषा में हो। पर सभी में भय और घृणा के प्रति जो द्वेष उत्पन्न हुआ है वह कोई संयोग नही बल्कि भावनाओं का एक सागर है जो कवि ने अपने हृदय में दबा रखा है।

कश्मीर का वर्तमान स्वरूप भी कविता की इन पंक्तियों में से झांक रहा है। जैसे- इनायत गुल की यह कविता -

''उपवन सूखा, वर्षा ही नहीं हुई
कोमल गुलाबों के पत्ते गिर रहे हैं
छोटे बड़े फूलों के होंठ तर होने को
तरस रहे हैं
हरियाली विक्षिप्त हो गई है --''

वास्तव में यह कश्मीर का वर्तमान रूप है। परन्तु इसके इस हाल के उत्तरदायी वही लोग हैं जिन्होने वातावरण से हवा को चुरा लिया है और आम आदमी सांस के लिए तरस रहा है। ऐसा कभी नही होता है कि विद्रोह के स्वरों को कुचला नहीं जाता। हर काल में क्रांति के स्वरों को शांत करने के लिए बल और शोषण का सहारा लिया जाता रहा है। आतंकवाद के विरुद्ध उठी आवाज़ भी दबाने की कोशिश होती है। जैसे फारुख नाज़की की ये पंक्तियां-

''मेरा इक हाथ़ कटकर
धरा पर गिरा .....
उंगलियां हाथ की गुनगुनाने लगी
हद से बढ़ते हुए हाथ
तोड़े गए
हद से बढ़ती हुई शाखा
काटी गई''

कहीं-कहीं कवि को लगता है कि इसके पीछे अचेतन तौर पर वह स्वयं ही दोषी है। परन्तु यह अवधारणा उसकी कुंठाओं से उपजी-सी लगती है। अंधेरा तभी पनपता है जब रोशनी कम हो जाती है। अगर अंधेरों के दीवानों ने कुछ शमाएं बुझाईं थीं तो रोशनी के दावेदारों ने क्यों नही हज़ार हाथों में मशालें थाम लीं। अंतिम प्रश्न नामक कविता में कवि इस बात की पुष्टि करता है --

"मुझे बता की
मेरी आँखों पर
अंधकार का प्रश्नचिन्ह
किसने लगाया...?
तुमने.......... ?
या स्वयं मैंने .... ?"

डॉ० नज़ीर आज़ाद की ये पंक्तियाँ वास्तव में एक प्रश्न नहीं एक पहलू हैं जो विचार योग्य हैं।

बेशक आज हम आतंक के इस वातावरण में स्वयं को असुरक्षित महसूस करें परन्तु यह तथ्य भी सही है कि अब भी लाखों व्यक्ति अपनी धरती से जुड़े हैं। अब भी वे चिनारों तले सांस लेते हैं। वे अपने महबूब-ए-वतन से जुदा नहीं हैं। मोती लाल साकी अपनी कविता में विनती करते हैं :

बारूद के ढूहे से टेक लगाए
मुरली वाले
बजाते रहना तुम 'मलहार'

विडम्बना ये देखिए कि जिस धरती पर फसलें लहराया करती थीं (शांति एवम् विश्वास की) वहीं के हालात बदल गए हैं। आज एक चैन की साँस के लिए भारी मूल्य चुकाना पड़ता है। और इस तपिश से तंग आकर कवि कहता है–

"उपजाऊ घटा बंजर हुई है
संशय की भारी शिला
दिल की डाली पर लटक रही है
शांति का कपिलवस्तु
त्याग कर
विस्थापित हुआ गौतम
परन्तु बिना निर्वाण के ही"

यहाँ अपनी धरती का झुलसा चेहरा व्यक्त किया गया है। बदलते समीकोण उजागर हुए हैं। एक शिकवा है अपने ही भाइयों से जो अपनी मिट्टी को रक्तरंजित छोड़कर विस्थापित हो चुके हैं। परन्तु अब भी कुछ लोग भेड़ियों की सुर्ख आँखों में आँखें डाले भय को अँगूठा दिखा रहे हैं। सतीश विमल की कविता हिम्मत बंधाती है–

"मैं अब बच्चों की
उंगली थामे चलूंगा
उन्हें जहां भय न लगे
विचरने दूँगा।
अपनी सोचो की जंजीरों को-"

आतंक चाहे जहाँ भी हो जिस काल में भी हो कवि ने कलम को ढाल बनाया है इन्सानियत के लिए डॉ. अग्निशेखर सरीखे कवि का हृदय भी तड़प उठता है। और वे 'मुजाहिद से प्रार्थना' जैसी कविता की रचना करते हैं।

"तुमसे बेहतर कौन शिनाख़्त कर सकता है
हमारे उन मरे हुए लोगों की
दोस्त, तुम ही हमारी मौत को समेटने में
बटा सकते हो हमारा हाथ"

इस पुस्तक की तमाम कविताएँ आतंकवाद के विरुद्ध लिखी गई हैं ? सभी कवियों ने एक ही मुहावरे का प्रयोग कर अपने-अपने शिल्प के अनुरूप रचना की है। मैं नहीं जानता की ऐसी कौन-सी मज़बूरी थी, ऐसा कौन-सा कारण था जो कवि को केवल एक ही पक्ष में कविताएं कहनी पड़ीं। क्या कवियों का दायित्व ये नहीं की घृणा, द्वेष और आतंक की जड़ को तलाशते! क्या कवि बिना पड़ताल के जो भी लिखेगा उसे स्वीकृति मिल जानी चाहिए ? क्या उसका दायित्व नहीं की उन कारणों का भी ज़िक्र हो जिन्होंने एक व्यक्ति के हाथ में बंदूक थमा दी। कवि कर्म मात्र एक पहलू का चेहरा देखकर रचनाशील हो जाना नहीं होता अपितु सत्य तथा यथार्थ की जड़ों तक जाना होता है! इन सब के लिए हिम्मत एवं साहस की आवश्यकता होती है। इतिहास गवाह है कि कितने ही साहित्यकारों ने अन्याय को अन्याय लिखा चाहे वह राजसत्ता द्वारा किया गया हो चाहे विद्रोहियों द्वारा! फिर चाहे उनको देश निकाला मिला हो या मौत का फ़तवा पर उन्होंने समय की धड़कन को अपनी कलम से महसूस किया है। वक्त के नथुनों में नथेल डाली है।

सतीश विमल का यह संकलन एवं अनुवाद' "अंधेरे से चुराई गई कविताएँ" एक साहसपूर्ण तथा गहण शोध भरा कार्य है! उनके इस प्रयास तथा हिन्दी जगत को अन्य भाषी कवियों से परिचित करवाने के लिए उनको बधाई तथा धन्यवाद!

पुस्तक – "अंधेरे से चुराई गई कविताएँ"
संकलन एवं अनुवाद – सतीश विमल (2006)
प्रकाशक – बअलमदार मीडिया पर्सन्ज़ एसोसिएशन
चरार-ए-शरीफ़, कश्मीर-191112

ooo